UGC Approved Research Journal No. 47816
पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510

ISSN : 2456-8856
डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

Peer Reviewed Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30

पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 23, अंक 208

फरवरी 2021

रविदास सत करि आसरे, सदा सत्त सुख पाय।
सत इमान नहिं छांडिये, जग जाए तऊ जाय॥

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 23 अंक 208
फरवरी 2021

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	आम्बेडकरवादी हिन्दी दलित कविता	डॉ. धीरज वणकर	04
3.	डॉ. दयानंद 'बटोही-कृत 'सुरंग' और 'यातना की आँखें': एक सिंहावलोकन	प्रो. देवनारायण पासवान'देव'	09
4.	'यमदीप' में उपेक्षित किन्नरों की जीवन-व्यथा	प्रा.उमाजी शंकर पाटील	12
5.	पृथ्वी के बर्बरता पूर्ण संहार की दृश्यात्मक त्रासदी की अभिव्यक्ति-'कागज एक पेड़'	आयु. शेखर	17
6.	भेंटवार्ता (साक्षात्कार)	डॉ. माता प्रसाद से सोहनलाल सुबुद्ध	22
7.	'शब्दयात्रा ' की काव्य-गोष्ठी सम्पन्न समाचार	आयु. पारसकुंज	26

UGC द्वारा मान्यता 47816 प्राप्त पत्रिका
खाते का नाम - आश्वस्त,खाते का नं.- **63040357829**
बैंक - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

12वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के मध्य जब जातिवादी घृणा, धर्मवाद व ब्राह्मणवाद अपनी चरम सीमा पर था, उस काल में जातिवाद, वर्णवाद के विरोध में आवाज उठाने वाले संत गुरु रविदास का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

संत गुरु रविदास के युग में समाज में अनेकानेक मत–मतांतर खड़े हो गये थे, बहुत से अमानवीय कर्मकाण्ड प्रचलित थे। जिसके कारण समाज में बहुतसी विकृतियाँ उत्पन्न हो गई थी। तत्कालीन युग में जहाँ छुआछूत व्यापक रूप से फैला था, वहीं चातुवर्ण्य तथा जन्म मूलक अधिकार भेद का बोलबाला था। तथाकथित निम्न समझी जानेवाली जाति में जन्में बुद्धिमान व योग्य व्यक्ति की कोई कद्र नहीं होती थी। गुरु रविदासजी ने अपनी जाति एवं अपने कार्य को कदापि छिपाया नहीं बल्कि खुलकर स्पष्ट रूप से प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने स्वयं अपने पदों में कहा भी है –

''काशी डिग मंडूर स्थाना,
शूदर वरण करता गुजराना।
मंडूर नगर लीन औतारा,
रविदास सुभ नाम हमारा।।''

भारतीय दलित समाज के जागरुक आध्यात्मिक संत रविदास अत्यंत विनयशील एवं उच्चकोटि के आत्मज्ञानी थे। उन्हें तत्व–दर्शन स्व अनुभव से हुआ था। उन पर उस भक्ति का प्रभाव था जो उस युग में एक आन्दोलन के रूप में आरंभ हुआ था। उनकी भक्ति निर्गुणवाद पर आधारित है जिसमें ईश्वर के साकार रूप, मूर्ति पूजा और सम्प्रदायवाद के खण्डन के साथ–साथ वेद तथा वर्णाश्रम धर्म का भी खण्डन हैं वे कहते हैं –

'मन ही पूजा, मन ही धूप
मन ही सहज सरूप
पूजा, चरचा न जानू
कहि रविदास बखानू।'

'कह रविदास ताहि का पूजूं
जा के गांव ठांव नांव नहीं कोई।'

संत गुरु रविदास ने किसी भी वेद को प्रामाणिक नहीं माना है, और न ही पूज्य और पठनीय। अपने दोहे में वे कहते है–

चारों वेद करो खण्डोति,
गुरु रविदास करो दण्डोति।

संत गुरु रविदास ने जातिभेद पर कड़ा प्रहार करते हुए कहा कि देश की एकता, अखण्डता तथा शांति के लिए जाति रूपि रोग को समूल नष्ट करना आवश्यक है। उनके अनुसार मानव जाति एक है, इसलिये सभी मानव को एक समान समझकर पारस्परिक प्रेम और सौहार्द्र का व्यवहार करना चाहिए।

''जनम जात मत पूछिये, का जात का पात।
बामन, खतरी, वैशय, शूदर सबन की एक जात।''
रैदास एक ही नूर ते जिमि उपजों संसार।
ऊँच–नीच किनी विधि भये बामन अरू चमार।।

संसार में प्रत्येक वस्तु क्षण–प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है, मानव जीवन भी क्षण भंगूर है। इस भाव को संत गुरु रविदास ने इन शब्दों में व्यक्त किया है –

'यह तन ऐसा जैसे घास की टाटी।
जलि गई घास रहि गई माटी।।'

संत गुरु रविदास ने मानव को सुख–दुख में समभाव रखने का भी उपदेश दिया है। उनका कहना है कि मानव सुख–सरिता में इतना भी निमग्न नहीं हो जाना चाहिए कि वह अपना विवेक ही खो बैठे। इसी प्रकार सिर पर विपत्तियों के बादल घिरे देखकर अपना विवेक गंवाकर हताश एवं निराश भी नहीं हो जाना चाहिये।

हर्ष और शोक को समान भाव से लेने पर दुख भी सुख की भांति लगेगा। उन्होंने कहा है –

'जनमे को हरस का, का मरने को सोग।
बाजीगर के खेल को, जानत ना ही लोग।'

संत गुरु रविदास ने उन तमाम बातों का घोर विरोध किया जो मानवीय गरिमा के विरुद्ध था।

ओशो ने संत गुरु रविदास को 'संतो के ध्रुव तारे' कहा है। उनके अनुसार–भारत का आकाश संतों के सितारों से भरा है, अनन्त–अनन्त सितारे हैं, यद्यपि ज्योति सबकी एक है। संत रैदास उन सब सितारों में ध्रुवतारा है, इसलिये कि शूद्र के घर में पैदा होकर भी काशी के पंड़ितों को भी मजबूर कर दिया, स्वीकार करने को...चमार के घर पैदा होकर भी ब्राह्मणों ने स्वीकार किया, वह भी काशी के ब्राह्मणों ने! बात कुछ अनेरी है, अनूठी है।' रैदास में कुछ रस है, सुगंध है जो मदहोश कर दे। रैदास इसलिये भी स्मरणीय है कि उन्होंने वही कहा है जो बुद्ध ने कहा है। फर्क इतना है कि बुद्ध की भाषा ज्ञानी की भाषा है, रैदास की भाषा भक्त की भाषा, प्रेम की भाषा है। ऐसे संत शिरोमणि को उनके 644वें जन्म जयंति पर शत्–शत् नमन्...।

– डॉ. तारा परमार

आम्बेडकरवादी हिन्दी दलित कविता

– डॉ. धीरज वणकर

डॉ.बाबा साहब अंबेडकर दलितों, वंचितों, स्त्रियों एवं मजदूरों के हिमायती होने से एक प्रगतिशील विचारक थे। वे मानवमात्र का कल्याण चाहते थे। उनका संदेश देखिए–"मेरा संदेश है, संघर्ष और अधिक संघर्ष, बलिदान और अधिक बलिदान, बलिदानों और कष्टों की गिनती किये बगैर केवल संघर्ष ही से उनकी मुक्ति प्राप्त हो सकती है।"[1] अछूतों में आगे बढने और मुकाबला करने का सामूहिक संकल्प पैदा होना चाहिए, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उनमें साझा दृढ निश्चय होना चाहिए, उनका काम इतना महान है और उनका उद्देश्य इतना उत्तम है कि समस्त अछूतों को एक स्वर होकर प्रार्थना करनी चाहिए। एक और संदेश गौर से देखिए – "मेरे शोषित गरीब भाईयों! मैंने तुम्हारे लिए जो कुछ भी किया है, वह बेहद मुसीबतों, अत्यंत दुःखों और बेशुमार विरोधियों का मुकाबला करके किया है। यह कारवाँ आज जिस जगह पर है, मैं बड़ी मुसीबतों से यहाँ तक लाया हूँ। तुम्हारा कर्तव्य है कि यह कारवाँ सदा आगे ही बढ़ता रहे, बेशक कितनी ही रूकावटें क्यों न आये, यदि मेरे अनुयायी इसे आगे न बढ़ा सके तो इसे यहीं छोड़ दें। पर किसी भी हालत में पीछे न जाने दे। अपने लोगों को मेरा यही संदेश है।[2]

भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत को जरूरत है अंबेडकरी विचारधारा की, जो कभी भी शोषकों की प्रशंसक नहीं रही किन्तु उन्हें मानवता का बड़ा गुनाहगार मानती है। जो जाति–पाँति एवं शोषकों की सदैव निदंक रही हैं। यह बुद्ध की अहिंसा को स्वीकार करती है, जो आज्ञा देती है कि आवश्यकता हो तो हिंसा की जा सकती है केवल प्रबल इच्छा एवं सुख–भोग के लिए नहीं। मनुष्य मात्र को सम्मान, स्वाभिमान से जीने का हक है। अंबेडकरी विचारधारा मानती है कि शिक्षा सबके लिए आवश्यक है और रुचिकर व्यवसाय अपनाना सभी का अधिकार है। इसके लिए सब को समानता, स्वतंत्रता, न्याय व समान अवसर मिलने चाहिए। यह विचारधारा घोषित करती है कि हम सब इन्सान होते हुए इस देश के सम्मानीय नागरिक है और हम सब से पहले भारतीय है। देश के सभी संसाधनों पर देश के सभी नागरिकों का अधिकार है। हम अपने तथा मानव समाज के कल्याण हेतु इस मार्ग पर यथार्थता से चलें।

दरअसल दलित शब्द सदियों तक अस्पृश्य समझी जाने वाली उन तमाम जातियों के लिए सामूहिक तौर पर प्रयुक्त होता है. जो भारतीय हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित है। संवैधानिक भाषा में इन्हें ही अनुसूचित जातियाँ कहा गया हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर के आंदोलन के बाद यह शब्द हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित हजारों वर्षों से अस्पृश्य समझी जाने वाली समग्र जातियों के लिए सामूहिक रूप से प्रयोग होता है। हिन्दू धर्म से जातियों को समाप्त करने के लिए बड़े–बड़े साधु–संतों ने प्रयास किया। बड़े–बड़े राजाओं–महाराजाओं ने कोशिश की और कोशिश करते–करते साधु–संत चले गए. मगर जाति नहीं गई। सामंतवादी अवस्था से छुटकारा देने वाले मार्क्सवाद को कैसे भूलाया जा सकता है? वैसे भारत में समानतावादी एवं देश के दलितों–वंचितों की पीड़ा हरनेवाली डॉ. अंबेडकर की विचारधारा का उदय होता है। इसी चिंतन ने देश के सर्वहारा वर्ग के भीतर नई चेतना एवं नये उत्साह का संचार किया। नई राजनैतिक चेतना देते हुए इस विचारधारा ने अपना ताजगी भरा सामाजिक तथा धार्मिक चेतना का शंखनाद किया तो मानो एक नये युग का निर्माण हुआ था। जिन लोगों को अपने घरों की दहलीजों को पार करना सात समंदर फलांगने के समान था, इस देश के हुकमरान बनने की तैयारी करने लगे। बाबा साहब ने सिर्फ अछूतों की मुक्ति के लिए ही संघर्ष नहीं किया, पर उन्होंने राष्ट्र के निर्माण एवं भारतीय समाज के पुनर्निर्माण में अनेक

तरीकों से अहं भूमिका निभाई हैं। वे अपने देश के लोगों से बेहद प्यार करते थे और उन्होंने उनकी मुक्ति एवं खुशहाली के लिए अत्याधिक काम किया।

दलित साहित्य आन्दोलन डॉ. अंबेडकर की देन है। उन्होंने 'मूकनायक' पत्रिका के माध्यम से गूंथे दलित वर्ग के लोगों को अभिव्यक्ति के लिए प्रोत्साहित किया। कहा जाता है कि सन् 1960 के बाद दलित साहित्य का जन्म हुआ। डॉ. अंबेडकर दलितों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार, को चुपचाप देख ही नहीं रहे थे अनुभूति भी कर रहे थे। इसलिए उनकी स्थिति बेचैन हो रही थी। उन्होंने गांधीजी, महात्मा ज्योतिबा फूले के साथ मिलकर उनके उद्धार के लिए अनेकों योजनाएँ भी बनाई थी। संविधान में दलितों के लिए विशेष प्रवाधान भी रखे गये। मगर यह सब बाह्य उपचार थे। सवर्ण समाज फिर भी असमानता, अन्याय और तिरस्कार की दृष्टि से ही दलित समाज को देखता था। स्वतंत्रता के बाद भी उनके अधिकार राजनीति के शिकार बन गये। फलस्वरूप महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले व डॉ. अंबेडकर के प्रभाव में उठे व्यापक सामाजिक आंदोलन उभरकर सामने आया। डॉ. चमनलाल ने 'मुक्ति के लिए सांस्कृतिक कर्म' लेख में लिखा था कि –"मध्यकाल के मराठी संत साहित्य व इसके साथ ही पूरे भारत में उठे भक्ति आन्दोलन को भी दलित साहित्य ने अपनी परंपरा के अर्थरूप में देखा है। मराठी में नामदेव, चोखामेला, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ आदि संत, कवि आधुनिक दलित साहित्यकारों के लिए आदरणीय हैं। इसी प्रकार उत्तर भारत में कबीर, रविदास, मीराबाई, दयाबाई, सहजोबाई व अन्य अनेक भक्ति कवि सेन, पीपा आदि हिन्दी के दलित साहित्य के लिए प्रेरणाश्रोत बने हैं। थोड़ा इससे भी पीछे चलें तो हिन्दी साहित्य के आदिकाल में ही अनेक नाथ व सिद्ध कवि दलित भावनाओं की अभिव्यक्ति करते प्रतीत होते हैं। इस सब से भी ज्यादा महत्वपूर्ण नाम है, जिसने पूरे भारत की दलित साहित्य धारा को प्रभावित किया है, गौतम बुद्ध का, सो परंपरा के रूप में दलित साहित्य अपनी जड़ें गौतम बुद्ध के चिन्तन में खोजता हैं। गौतम बुद्ध के विचारों से अनुप्राणित होकर व आधुनिक ज्ञान से संपन्न होकर जिन इतिहास पुरूषों ने दलित आन्दोलन को समृद्ध किया, उनमें दक्षिण में डॉ. रामास्वामी नायकर (पेरियार), पश्चिम में ज्योतिबा फूले, साहूजी महाराज व सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम है–बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर का।"[3]

डॉ. अंबेडकर ने सामाजिक समता के लिए कई क्रांतिकारी आन्दोलन किये, उन्हें सफलता भी मिली। उनकी शिक्षा से ही देश के करोड़ों गुलामों ने अपनी गुलामी को जाना और उन्हें गुलाम बनाने वाले मनुवादियों व जातिवादियों को जाना। दलितों को अपनी दास्ता की सच्ची पहचान मिली। डॉ. अंबेडकर जी ने आँखे खोल–खोलकर अपनी दास्ता की पहचान दलितों को करायी। उन्होंने दलितों में क्रान्ति की भावना जगाई तथा दलित समाज के लोगों में अपनी दास्ता पूर्ण जीवन की बेड़ियों को तोड़ने के लिए छटपटाहट पैदा हुई। डॉ. अंबेडकर जी के कारण दलितों के विचार एवं व्यवहार में तूफान की हलचल–सामाजिक विषमता को नष्ट करने के लिए पैदा हो गई। मराठी दलित साहित्य के शीर्षस्थ चिन्तक व दलित साहित्यकार डॉ. गंगाधर पानतावणे ने सही कहा है कि – 'हमारे साहित्य की प्रेरणा केवल डॉ. बाबा साहब अंबेडकर और उनकी क्रान्तिकारी विचारधारा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कई समालोचक दलित साहित्य का रिश्ता कभी मार्क्सवाद से, कभी हिन्दूवाद से या कभी नीग्रो साहित्य से जोड़ते हैं। मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि हमारे दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवाद है, न हिन्दूवाद है, न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अम्बेडकरवाद है। हाँ! एक बात अवश्य माननी होगी की ये नीग्रो साहित्य तथा दलित साहित्य में प्रतिबिम्बित व्यथा, वेदना मानवीय आक्रोश है। लेकिन नीग्रो अछूत नहीं थे लेकिन भारतीय दलित अछूत था और अछूत है। छुआछूत तो भारतीय जीवन की पहचान है। बाबा साहब ने इस सन्दर्भ में एक नए शब्द की खोज की। उन्होंने

कहा भारत में अस्पृश्यता गहरी और भीषण है। उसके धर्म का आधार है। अछूतपन गुलामी से कहीं ज्यादा क्रूर है।''[4]

मनुवादी व्यवस्था ने दलित के साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया। वर्णव्यवस्था के जरिए शूद्र को अपमानित किया जाता था। उसकी परछाई और स्पर्श से सवर्ण नफरत करते थे। कई जातिवादी कुप्रथाओं के कारण दलित समाज के लोगों को कई प्रताड़नाएँ झेलनी पड़ी। भीमराव जी ने भारतीय समाज की कई समस्याओं का सामना किया। उन्होंने दलितों में जागरूकता लाने के लिए अथक प्रयत्न किया। उसके फलस्वरूप आज हम कुछ लिख रहे हैं, डॉ. अंग्नेलाल ने लिखा है कि – "डॉ. अंबेडकर के सामाजिक समानता, स्वतंत्रता और बंधुता की स्थापना आन्दोलन, नारी विमुक्ति आन्दोलन, मंदिर प्रवेश आन्दोलन, चौदार सरोपा से पानी पीने का आन्दोलन, बेकार परती भूमि पर कब्जा कर उत्पादन बढ़ाने का आन्दोलन, बेगार प्रथा को समाप्त करने का आन्दोलन, महिला प्रसूति सुविधा आन्दोलन, मलावर की वन्यजाति सुधार आन्दोलन तथा शैक्षिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों ने हिन्दुओं को अपने अन्दर झांकने के लिए मजबूर कर दिया। एक ओर तो इन आन्दोलनों ने दकियानूसी शूद्र और दलित समाज को आत्म सम्मान और गौरव तथा उन्नतिशील अतीत के इतिहास को खोजने और समझने के लिए भी मजबूर कर दिया। इसका सुपरिणाम यह हुआ कि महाराष्ट्र में ही नही अपितु भारत के सभी प्रदेशों में एक सांस्कृतिक सम्मान की धारा वह निकली। अस्तु भिन्न प्रदेशों के लोग अपनी–अपनी प्रदेशीय भाषाओं में डॉ. अंबेडकर जी के उपर्युक्त आंदोलनों से प्रेरित होकर कविता, कहानी, गीत, नाटक, लोकोक्तियाँ, उपन्यास आदि लिखने लगे। अपितु यह कहना सही और सटीक होगा कि डॉ. अंबेडकर जी के चिन्तन ने हिन्दी दलित साहित्य चेतना का शंख नहीं फूँका, बल्कि सही तो यह है कि उन्होंने केवल हिन्दी में ही नहीं बल्कि भारत की विभिन्न भाषाओं में दलित साहित्य संरचना का प्रेरक स्त्रोत ही प्रवाहित कर दिया।

हम देखते है कि – आज दलित साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, लघुकथा, संस्मरण और आत्मकथाओं ने अपना स्थान बना लिया है। आत्मकथा और कविता में बहुत कारूणिक वेदना है और इस वेदना से आक्रोश उभरकर सामने आता है। कारण दलित साहित्य के वरिष्ठ कवि ओमप्रकाश वाल्मिकि को अब और नहीं काव्य संग्रह लिखना पड़ता है। शीर्षक से ही पता चलता है कि कवि की सहनशीलता अब असहनशीलता में तबदिल हो गयी है, अब वह कुछ सहने के लिए तैयार नहीं है। उन्होंने बहुत लंबे समय तक इंतजार किया कि एक दिन अच्छा आयेगा किन्तु वह एख दिन आया ही नहीं। उनको हर तरफ छलावा, फरेब और धोखा देनेवाला लगा है। उनकी सभी उम्मीदों पर पानी फिर गया नजर आता है। लेखा–जोखा नामक कविता में वर्तमान परिवेश का यथार्थ चित्रण मुखरित हुआ है –

"गोपनीयता की शपथ में
रची गयी साजिशें
खाकी वर्दी की मंत्रणा में
मरी–दबी इच्छाओं के सायरन सी
गूंजती आवाजें / लूट–खसोट
मारामारी / पालों की अदला–बदली
संसद के गलियारों का / अधमरा लोकतंत्र भी
न अपना हो सका / न जगा सका विश्वास ही।''[6]

हिन्दी की अंबेडकरवादी कविताएँ डॉ. अंबेडकर के मिशन पर खड़ी प्रगति कर रही है। प्रत्येक कवि में अंबेडकरवादी वैचारिक पृष्ठभूमि स्पष्ट दिखाई देती है। दलित साहित्य के प्रखर चिन्तक एवं कवि डॉ.एन.सिंह की कविताओं में भी अंबेडकरवादी दृष्टि स्पष्ट हुई है, देखिए एक बानगी –

"इसलिए अब
मेरे हाथ की कुदाल
धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोंदेगी / उस व्यवस्था की

जिसके संविधान में लिखा है
तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है
श्रम में है
फल पर तेरा अधिकार नहीं।''[7]

अधिकांश समीक्षकों ने दलित साहित्य का मूल प्रेरणा स्त्रोत अंबेडकर की विचारधारा को माना है, जिसे 'अंबेडकरवाद' भी कहते है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एस. मोरे के मतानुसार – "वर्तमान असमान सामाजिक व्यवस्था का विरोध एवं उसमें आमूल परिवर्तन हेतु आंदोलनात्मक विचारधारा ही अंबेडकरवाद है। अंबेडकर वर्णव्यवस्था, जाति, भाग्य, भगवान, पुनर्जन्म, अंधविश्वास, पूजापाठ, कर्मकांड, स्वर्ग–नर्क, पाप–पुण्य की अवधारणा को नहीं मानते। वे विज्ञान सम्मत विचारों, समता, लोकतंत्र, विश्व बंधुत्व और न्याय के पक्षधर हैं।''[8] अगर हम अंबेडकरवादी कविता की बात करे तो इसमें कलम का योगदान सबसे ज्यादा है। उंगलियों से झाडू हटाकर कलम थामने का साहसिक काम बाबा साहब की क्रान्ति नेकर दिखाया। अंबेडकरवाद की नींव में 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की उद्दात्त भावना है। जो भी दैन्य, दुःख समाज में मौजूद है। उसे दूर कर समता की स्थापना करना इसका लक्ष्य है। मराठी–हिन्दी के कवि दामोदर मोरे ने लिखा है – "अंबेडकरवादी ही दलित साहित्य का दर्शन है। बुद्ध, फुले, अंबेडकर का लेखा–जोखा ही दलित साहित्य का दर्शन है। अंबेडकरवादी साहित्य विचार ही दलित साहित्य के साहित्यिक विचार है।''[9]

अंबेडकरवादी कवियों की अनेकों कविताओं में पारंपरिक काव्यसृष्टि से टकराव नजर आता है। परंपरा ने कविता का एक ढाँचा बना दिया है। वैसी हो तो ही कविता। अंबेडकरवादी विचारों से प्रतिबद्ध कवि दामोदर मोरे की कविता अपने समय से जूझती दिखाई देती है। उनकी कविताओं के केन्द्र में अंबेडकर जी की सामाजिक क्रान्ति की चेतना हमें स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। कवि के हौसले बुलंद है मिसाल के तौर पर–

''क्यों नहीं हो सकता आसमाँ में सुराग
एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारो।''[10]

दामोदर मोरे अन्याय बर्दाश्त नहीं कर सकते, तभी तो लिखते है –

''मुझे बर्दास्त नहीं होता / शैतानों के हाथ में /
भारतीय संविधान का होना।''[11]

कवि दामोदर की 'गुलाम' कविता में क्रांति के स्वर उजागर हुए है, देखिए एक बानगी –

"क्या कहते हो/तुम्हारे पास कलम है/तो फिर/पत्थर के ईश्वर को क्यों महान बनाया/कुदरती सुंदर शिल्प इंसान को/नजर अंदाज क्यों किया?/आखिर क्यों महान बनाया? क्यों? क्यों?/शायद यही कारण है कि/तुम वर्ण व्यवस्था के गुलाम हो।''[12]

जाने माने दलित रचनाकार जयप्रकाश कर्दम जातिवाद पर प्रहार करते हुए 'जाति' नामक कविता में स्वर्ग जाने से इन्कार करते हुए घोषणा करते है –

"स्वीकार्य नहीं मुझे/जाना, मृत्यु के बाद/तुम्हारे कल्पित स्वर्ग में/वहाँ भी तुम/पहचानोगे मुझे/मेरी जात से ही/''[13]

सूरज बडत्या युवा कवि, कहानीकार एवं आलोचक के रूप में ख्याति प्राप्त है। वे अंबेडकरवादी कविता के सशक्त रचनाकार है। उनकी कविताओं में अंबेडकरवादी चेतना की आग धधकती दिखाई देती है। इंसानियत को पैरों तले कुचलने वाली प्रवृत्ति का पर्दाफास करना उनका कवि कर्म है। 'कविराज' नामक कविता में बेबाक रंग से कुरूपता को प्रस्तुत किया है। जाति प्रेमी कवियों को अपने कलम की दिशा बदलने का आह्वान करती है –

"युग युग बीतते रहे है/और तुम कविराज/जबरदस्ती बनाई गयी/अपनी दासी लेखनी से/सवर्णों, सामंतों और राजाओं का/यशोगान करते रहें।''[14]

प्रखर पत्रकार, लेखक एवं संपादक मोहनदास नैमिशराय एक प्रतिबद्ध दलित साहित्यकार है। वे एक कविता में भूखे नंगे के बारे में लिखते है –

"एक दिन/यह भूखा–नंगा असभ्य सा

दिखनेवाला आदमी

लाल किले की सबसे ऊँची बुर्ज पर लकीर खींचेगा

अपना हिसाब साफ करने के लिए।''[15]

शेखर एक अंबेडकरवादी कवि, चिंतक एवं आलोचक है। उनकी कविताएँ अंबेडकरवादी चेतना से ओतप्रोत है। 'मेरे कुनबे के लोग' कविता संग्रह की प्रकाशनीय में बताया गया है कि – 'कवि शेखर का कुनबा बहुत बड़ा है। इस कुनबे में विद्या का अभाव है एवं आर्थिक संपन्नता से वह कोसों दूर है। स्वतंत्रता, समता और सामाजिक न्याय से वह कुछ अपरिचित है। उसके ढेरों प्रश्न है, जिसे हल करने के लिए वह लगातार जूझ रहा हैं। ललकार कविता की एक बानगी –

"तुम्हें भारी पड़ चूका है/हमारे ललकार से/मेरे अस्तित्व को अनदेखा करना तुम्हार दंभ हो चुका चूर–चूर''[16]

गजरात की पृष्ठभूमि वाले युवा कवि, आलोचक धीरज वणकर संघर्ष के स्वरों को इस तरह व्यक्त करते हैं –

"सदियों से सदियाँ गुजरती गई/और हाशिएँ का समाज हॉशिये पर रहकर/चुपचाप सब कुछ भोगता रहा/किन्तु अब चुप थोड़े रहेंगे/''[17]

विख्यात दलित रकचनाकार स्व. ओमप्रकाश वाल्मिकी की कविताएँ भी शोषित, पीड़ित के संघर्ष को उजागर करती है। जिजीविषा का संघर्ष देखिए –

' "कुँआ ठाकुर का/पानी ठाकुर का/खेत खलिहान ठाकुर के कृ

गली–मुहल्ले ठाकुर के/फिर अपना क्या/गाँव?/शहर? देश?/''[18]

कवि खन्ना प्रसाद अंबेडकरवादी विचारक है। उनकी कविताओं में अंबेडकरी विचार उजागर हुए है – "यथा–परिवर्तन चाहती है, अंबेडकरवादी विचारधारा पुराने संस्कार को नया रूप देने की, सामाजिक बंधनों को तोड़–मरोड़ कर फेंक देने की, असमानता का कल्मष मिटाकर, समानता की सद्भावना फैलाने की।''[19]

समग्रतः कहा जा सकता है कि – हिन्दी दलित कविता अंबेडकरवादी विचारों को लेकर चली है। सभी अंबेडकरवादी कवि जातिगत भेदभाव को मिटाना चाहते है और मानवतावाद को स्थापित करना चाहते है।

अध्यक्ष–हिंदी विभाग
बी.डी. कॉलेज लाल दरवाजा,
अहमदाबाद–380001 (गुजरात)
चलभाष – 9638437011

संदर्भः–

1. बहुजन युग (मासिका, संपादक–सुशीलकुमार, आगरा–अप्रैल–2012) – पृ. 9
2. वही – पृ.13
3. समकालीन भारतीय साहित्य (पत्रिका, मई–जून–1998 डॉ.चमनलाल का लेख, नई दिल्ली)–पृ.155
4. बहुजन युग – अप्रैल–2012, पृ. 15
5. वही – पृ. 15
6. वही – पृ. 16
7. सतह से उठते हुए – डॉ.एन.सिंह, पृ. 110
8. दलित साहित्य (वार्षिकी) संपा–डॉ.जयप्रकाश कर्दम–2013, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली–प.85
9. वही–पृ.154
10. वही – पृ.155
11. सदियों से बहते जख्म – दामोदर मोरे, पृ.97
12. वही – पृ.141
13. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता – डॉ.काली चरण स्नेही–पृ.105
14. दलित अस्मिता – संपादक–विमल थोरात, जनवरी–जून–2012, नई दिल्ली–पृ.82
15. दलित विमर्श – डॉ.धीरजभाई वणकर – ज्ञान प्रकाशन–कानपुर, वर्ष–2012–पृ.33
16. वही–पृ.100
17. अब चुप थोड़े रहेंगे (कविता संग्रह) – ज्ञान प्रकाशन–2015, पृ.27
18. दलित वार्षिकी – संपाजक–जयप्रकाश कर्दम–2013, पृ.96
19. सत्ता के सौदागर – डॉ.खन्नाप्रसाद अमीन – श्री नटराजन प्रकाशन – नई दिल्ली–2014, पृ.49

डॉ. दयानंद 'बटोही–कृत 'सुरंग' और 'यातना की आँखें' : एक सिंहावलोकन

– प्रो. देवनारायण पासवान 'देव'

करीब एक दहाई यानी दस सर्जनात्मक कृतियों के रचयिता तथा अनगिनत पत्र–पत्रिकाओं में छपे और छाए हुए डॉ. दयानंद 'बटोही' हिन्दी और मगही साहित्य जगत में किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। उनकी अन्य कृतियां, मसलन–'कफनखोर' (मगही, कहानी–संग्रह), 'यातनाओं के जंगल' (हिन्दी कहानी–संग्रह), 'माथा–दर्द' (कविता–संग्रह), 'साहित्य के आईने में' (निबंध–संग्रह), 'साहित्य और सामाजिक क्रान्ति' (साहित्यिक निबंध–संग्रह), 'साहित्यकारों के साथ' (संस्मरण) तथा 'युगपुरुष डॉ. अम्बेडकर' (प्रबंध काव्य) यदि प्रकाश में नहीं भी आई होती' (जो अपने मूल्यगत साहित्यिक गुणों के साथ मौजूद है) तब भी वे (डॉ. बटोही) अपनी केवल दो लघु किन्तु समर्थ कृतियों, यथा–'सुरंग' (कहानी–संग्रह) तथा 'यातना की आंखें' (नवगीत–संग्रह) के बल पर एक कालजयी रचनाकार के रूप में रेखांकित किए जाने योग्य होते गोकि वे आज भी अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक ऊर्जा एवं जीजिविषा के साथ हमारे बीच विद्यमान हैं तथा कलम के एक सजग प्रहरी एवं समर्थ प्रणेता के रूप में लिख रहे हैं, छप रहे हैं, छा रहे हैं। **अस्तु :**

यहां हम डॉ. 'बटोही' के सम्पूर्ण कृतित्व पर विचार करने नहीं जा रहे हैं। मात्र उनकी दो रचनाओं 'सुरंग' (कहानी–संग्रह) और 'यातना की आंखें' (कविता–संग्रह) पर अपने विवेचन–विश्लेषण को केन्द्रित करके रचनाकार के व्यक्तित्व में यत्किंचित् झांकने–उतरने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन सम्प्रति हम 'सुरंग' को लेकर अपना मत स्थापित करना चाहते हैं। 'यातना की आंखें' पर हम अपने अगले आलेख में विचार करेंगे। ऐसा हम दो कारणों से करना चाहते हैं। पहला कारण तो यह कि दोनों रचनाएं विधा की दृष्टि से बिलकुल भिन्न हैं। एक कथा है, दूसरी कविता–अपने कथ्य, शिल्प एवं वैशिष्ट्य में सर्वथा अलग। अतः दोनों विधाओं का घालमेल करना उचित प्रतीत नहीं होता। इससे आलेख की पृष्ठ–संख्या जरूरत से ज्यादा बढ़ जाएगी, सो अलग। अतएव उक्त नवगीत की चर्चा अगली कड़ी में। आइए, सम्प्रति सुरंग (कहानी–संग्रह) की चर्चा करें।

'सुरंग' की कहानियां अपने कथा–शिल्प में आज के शहरी और ग्रामीण जीवन की भूख को–रोटी, कपड़ा, मकान और सम्मान की भूख को (जो बेरोजगारी और सामाजिक, आर्थिक–गैर बराबरी के कारण उत्पन्न हुई है और जो भयावह रूप से मनुष्य की अस्मिता और अस्तित्व को निगल–सी जा रही है) अपनी अर्थवत्ता में पूरी शिद्दत से उकेरती एवं उरेहती हैं। ये कहानियां अभावग्रस्त व फटेहाल दलित–उपेक्षित नर–नारी के उस दर्द एवं दंश को उभारने एवं सहलाने में मरहम का काम भी करती दिखती हैं। जिस दर्द एवं पीड़ा दंश को वे चिरकाल से अपने सीने पर झेलते–सहते आ रहे हैं और जिससे उबरने व मुक्त होने को आज छटपटा रहे हैं। मुक्ति के निमित्त इस छटपटाहट को 'सुरंग' के कथाकार डॉ. बटोही ने वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के क्रूर हो रहे रूपों एवं कुरूप बन गए अभिजात्य किरदारों के बीच बगावती मुद्रा में निरूपित किया है।

हम अपनी उपर्युक्त स्थापनाओं को सोदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं, किन्तु इस निवेदन के साथ कि किसी सर्जनात्मक कृति के विवेचन–विश्लेषण के क्रम में उसके प्रणेता के अन्तर में प्रवेश करना इसलिए अपरिहार्य–सा हो जाता है कि कृति और कृतिकार दोनों के प्राण तत्व प्रायः एक–से होते हैं। यदि किसी रचनाकार का मन–मुख एवं कलम–कागज एक समान नहीं है, तो उसकी कृति में वह जोर और सच्चाई पैदा नहीं हो सकती जिसके बल पर वह समाज का दर्पण या दीपक बन सके। हम इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ. बटोही की 'सुरंग' के शिल्प–स्वर का उद्घाटन करना अपना

समालोचकीय धर्म समझते हैं।

बहरहाल, सुरंग की कहानियों को पढ़कर देख लीजिए, विशेषकर, 'सुरंग', 'मुर्दागाड़ी', 'सुबह से पहले' और 'अनदेखा में' को, जहां गरीबी का दारुण दंश, बेरोजगारी से उत्पन्न चिंता और ढहती अस्मिता की टीस, अपमान की यातनाओं से कसकता जेहन और नारी का खुद को भोजन की तरह अंधेरे में परोस देने की विवशता तथा मुर्दा बन गया ग्राम्य जीवन सब कुछ एक मातमी अभिशाप बनकर उभरा किन्तु प्रतिरोध के स्वर–संदेश के साथ उजागर हुआ है। सुरंग का नायक 'मैं' गरीबी एवं जातिगत अपमान से त्रस्त है। उसका विवश बयान देखिए : 'घर से चिट्ठी आई है–अकाल में हालत खराब है। सभी बंधुआ मजदूर गांव छोड़कर शहर भाग रहे हैं। मैं खर्च कहां से भेजूं! कोई कर्ज नहीं देता। सभी कहते हैं, हरिजन होकर इतना पढ़ा दिया। मैं गांव वापस आ जाता हूं। इसी कहानी के एक सवर्ण पात्र की विकृत मानसिकता का शब्द–चित्र देखिए :

''उन्होंने (डॉ. विष्णु ने) ताव में कहा, 'जो चाहो, करो, मैं जब तक हूं, हरिजनों को रिसर्च करने नहीं दूंगा।' लेकिन अन्ततः वह कहानी के दलित 'मैं' को 'हिन्दी साहित्य में अछूत साहित्यकारों का योगदान' विषय पर रिसर्च की अनुमति प्रदान करने को विवश हो जाता है, परन्तु उस समय जब छात्रों द्वारा उसका घेराव होता है और विरोध में मुर्दाबाद के नारे लगाए जाते हैं।

सवर्णों की यह दूषित मानसिकता सिर्फ अविभाजित बिहार में ही नहीं देखी जाती, वरन् देश के उत्तर–दक्षिण, सर्वत्र इससे दलितों को दो–चार होना पड़ता है। सूरजपाल चौहान (दिल्ली) की एक कहानी है 'साजिश', जिसे 'साहित्य अकादमी' द्वारा प्रकाशित 'दलित कहानी संचयन' (संपादिका – रमणिका गुप्ता) में 'सुरंग' की तरह ही एक जगह मिली है। इस 'साजिश' में बैंक मैनेजर रामसहाय शर्मा की साजिश का पर्दाफाश किया गया है। यह सवर्ण बैंक मैनेजर भंगी जाति से आए नत्थू को बैंक लोन तो देने को राजी है, पर किसी ट्रांसपोर्ट के धन्धे में जाने के लिए नहीं, बल्कि वंशानुगत सुअरपालन के धंधे में चिपके रहने के लिए। लेकिन नत्थू भंगी की पत्नी शान्ता बैंक मैनेजर की इस विकृत साजिश को भांप जाती है और पति को 'पिगरी लोन' लेने से मना कर देती है। फिर तो दलित–पिछड़ों के युवकों के द्वारा बैंक मैनेजर का घेराव होता है और 'आइन्दा ऐसा नहीं होगा' कहते हुए बैंक मैनेजर नत्थू–शांता का ट्रान्सपोर्टिंग लोन मंजूर करने को विवश हो जाता है।

तो, यह प्रतिगामी शक्ति के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर है। अपने उद्धार और विकास के लिए, कहना चाहिए यथास्थिति से अपनी मुक्ति के लिए, छटपटाते हरिजनों या दलितों के द्वारा मुखरित बगावत का स्वर है, जिसे गांधीवादी किंवा अम्बेडकरी रास्ते से–संगठित व संघर्षशील रास्ते से आज की दलित कहानियों में कलात्मक ढंग से पिरोया गया है। डॉ. 'बटोही' की कहानियों में ये स्वर एवं तेवर कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर अनुस्यूत हैं।

यहां हमें प्रेमचंद याद आते हैं। उनकी दलित जीवन पर लिखी कई कहानियां, जैसे–'ठाकुर का कुआं', 'सद्गति', 'कफन' आदि उभरकर सामने आ गई है। इनमें प्रतिरोध का कोई तीखा या मुखर स्वर नहीं, बल्कि दबी जुबान से निकला घुटा–घटा स्वर है, और वह भी सिर्फ 'कफन' के धीसू में–निर्लज्ज, अकर्मण्य धीसू में, जो जमींदारी व्यवस्था और हिन्दू समाज के क्रूर–अंधविश्वासी व्यवहार के विरुद्ध पीठ पीछे की दबी आवाज है। मगर 'ठाकुर का कुआं' और 'सद्गति' में तो वह भी नहीं है। 'ठाकुर का कुआं' में अछूत मुन्नी अपने बीमार पति जोखू को कुएं का ताजा पानी नहीं पिला पाती और ठाकुर साहब की आवाज से ही थरथराती–कांपती हुई भाग आती है अपनी झोपड़ी में जहां प्यास से व्याकुल उसका बीमार पति जोखू भटकुइयां का गंदा पानी पीता दिखाई देता है। प्रेमचंद जी यहीं मौन हो जाते है।

यही हाल 'सद्गति' के दुखी चमार का है जो धूप और लू में भूखा–प्यासा पंडित घासीराम का चेला

फाड़ते–फाड़ते मूर्छित होकर गिर जाता है और मर जाता है। उस पर तुर्रा यह कि पंडित घासीराम उसके गले में रस्सी का फंदा डाल पंडिताइन की मदद से उसे घसीटता हुआ अपने द्वार से दूर लावारिस छोड़ आता है।

हम कहना चाहते हैं कि 'ठाकुर का कुआं', में दब्बूपन की पराकाष्ठा है और 'सद्गति' में मनुष्य की यानी अछूत मनुष्य की जो दुर्गति दिखाई गई है, वैसा क्रूर एवं घृणित रूप अन्यत्र कहीं दृष्टिगत नहीं होता है। यहीं प्रेमचंद की कहानियां आज की कहानियों से, विशेषकर दलित जीवन पर लिखी कहानियों से बहुत–बहुत पीछे जा पड़ती हैं। वस्तुतः आज की कहानियाँ अपने कथ्य और शिल्प में, रूप–सौंदर्य एवं दृष्टिकोण में अर्थात् वस्तु–छवि और रूप–छवि में जहाँ आ पहुंची है, वहां कथानक और घटनाएं तो कम हैं, किन्तु जैनेन्द्र और उनके समय की कहानियों की तरह अनुभूति की धुंध से ग्रस्त नहीं हैं। आज की कहानियों में प्रेमचंद की कहानियों की भांति एक प्रकार का वृतांत रस तो है, पर उनके सदृश चुप्पी और दब्बूपन की शिकार नहीं हैं। समानान्तर विरोध और प्रतिरोध के स्वरों एवं तेवरों से ओतप्रोत हैं ये, और अब इस स्थिति एवं स्थल से पीछे मुड़कर देखने का मतलब होगा पुनः भारतीय आदर्शवाद के इतिहास और परम्परा का दोहराव, जो हमें मान्य और काम्य नहीं है। अब उस आदर्शवादी परमपरा का परित्याग करके आज के समय और समाज की कुरुपताओं और विद्रूपताओं का साक्षात्कार करना–कराना, उनसे टकराना और जय–पराजय तक पहुंचना आज की कहानियों और कहानीकारों का लक्ष्य होना चाहिए, और हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि डॉ. दयानंद 'बटोही' की 'सुरंग', 'सुबह से पहले', 'अन्हेरवा में', 'शहर', 'मुर्दागाड़ी' और 'भूल' नामक कहानियां इस लक्ष्य तक जा पहुंची हैं एवं तद्नुरूप संदेशों को आत्मसात करने के लिए प्रबुद्ध प्रगतिशील पाठको को अपने पास बुला रही हैं।

यहां एक बात और कहने का जी चाहता है। वह यह कि 'कफन' में भूख और मनुष्यता की लड़ाई में मनुष्यता हार गई है। बटोहीजी की 'अन्हेरवा में' भूख ने नारी की इज्जत को नीलामी पर चढ़ाने का उपक्रम अवश्य किया है, परन्तु अन्ततः कहानी के मुख्य किरदार की आदमीयत को पतित पराजित नहीं होने दिया है। इलाहाबाद से बरास्ते पटना व गांव तक कहानी का फैलाव है। इस फैलाव में रेलवे की बदइंतजामी के साथ अकाल का भयावह दृश्य वर्णित है और बेपर्द किया गया है नौकरशाहों का वह भ्रष्ट कारनामा जिससे उत्तेजित होकर कहानी का मुख्य किरदार 'मैं' का हाथ सप्लाई इंसपेक्टर की गर्दन पकड़ लेने में भी संकोच नहीं करता। यह अंतर है प्रेमचंद की दलित कहानियों और आज की दलित कहानियों में। अपने 'गोदान' उपन्यास में (जबकि 'गोदान' युग के यथार्थ से जुड़ा उपन्यास माना जाता है) प्रेमचंद जी अछूत सिलिया और पंडित मातादीन के प्रेम को शादी के अंजाम तक ले जाने का साहस नहीं जुटा पाए, परन्तु बटोही जी अपनी 'भूल' शीर्षक कहानी में दि्ज–पुीत्र पारो और दलित–सुत रमेश के हाथ को एक–दूसरे के हाथ में धराने में, (और वह भी पारो के ब्राह्मण पिता गोबर के द्वारा) किसी संकोच का अनुभव नहीं करते।

इस प्रकार प्रेमचंद और जैनेन्द्र जहां आकर ठहर गए हैं वहां से आगे की कथा–यात्रा है, 'बटोही' जी की 'सुरंग' क्योंकि प्रेमचंद के दलित किरदारों में जहां दब्बूपन है, वहां 'बटोही' जी के किरदार 'बोल्ड' हैं, और जैनेन्द्र की नारी ('पत्नी' कहानी) में जहां आदर्श और अनुभूति की धुंध एवं द्वन्द्व है, वहीं बटोही की जूली ('सुबह के पहले') में स्पष्टवादिता एवं प्रतिक्रिया का स्वर मुखरित है।

अतएव 'सुरंग' की कहानियों के सम्बन्ध में श्री बद्रीनारायण पाण्डेय का यह मत इस मायने में सही है कि 'बटोही जी लोक जीवन की तह में छिपे दर्द के मौन आक्रोश को प्रकट करनेवाली दलित कहानी' के

लेखक हैं, अतः इनकी कहानियों को 'कथा–सम्राट प्रेमचंद की दलित कहानी की अगली गाथा के रूप में' शुमार किया जाएगा। इनकी ये कहानियां 'दलित जनजीवन के हर्ष–विषाद की संवेदनशील मर्मस्पर्शिता और अभिजात्य समाज की विद्रूपता को प्रकट करनेवाली तथा समाज की विषमता के बीच छटपटाती–कराहती इन्सानियत की खोज करनेवाली' कहानियां हैं, जिनमें बटोही जी अपने 'मैं' के साथ पूरी शिद्दत एवं साहसपूर्वक विद्यमान हैं–कहीं अपनी गरीबी की मार और दीनता के भार से दबे झुके नहीं दिखते, कहीं अपनी 'अनकही' भी कहते हैं, तो 'अन्तर की आग' को शोता बनाकर भभकते हुए कहते हैं (देखिए, 'यातना की आंखें) ।

अन्त में, हम इस स्थापना के साथ आलेख में पूर्ण विराम लगाना चाहते हैं कि 'सुरंग' की भाषा–शैली नई दलित कहानी के निकट है। पात्रानुकूल भाषा तथा लेखक की मगही जबान के गाम्य शब्द एवं मुहावरे 'सुरंग' में चार चांद लगाते हैं। पात्रों के परिपार्श्व में प्रकृति एवं वातावरण का संयोजन सुरंग की कहानियों को उत्तर आधुनिक कहानियों के समकक्ष ला खड़ा करना है। लेकिन कहीं–कहीं भाषा की व्याकरणिक भूलें एवं विराम–चिन्हों की अनदेखी आंखों में खटकती है। ये भूलें प्रेस के खाते में भी जा सकती हैं, पर पाठक तो इन्हें लेखक के मत्थे ही मढ़ेंगे। अतः सुरंग के अगले संस्करण में इन भूलों के परिमार्जन के सुझावों के साथ दलित कलमकार डॉ. दयानंद 'बटोही' को दलित कथा–साहित्य के खाते में ऐसी समर्थ रचना प्रदान करने के लिए साधुवाद। इत्यलम।

देवकुटीर, पो.–बिहारीगंज, जिला–मधेपुरा,
पिनकोड–852101 (बिहार)
मोबा. 8404927340

'यमदीप' में उपेक्षित किन्नरों की जीवन–व्यथा

– प्रा. उमाजी शंकर पाटील

शोध आलेख का सार (Abtract)

फिलहाल हिंदी साहित्य में 'किन्नर–विमर्श' की जोरदार चर्चा है। किन्नर समस्याओं को लेकर अनेक साहित्यकार लिख रहे हैं। उपन्यासकार नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास भी उपेक्षित किन्नर जीवन पर आधारित है। इसके माध्यम से उन्होंने हाशिए के किन्नर समाज की विभिन्न समस्याओं को बेहतरीन ढंग से उठाया है। आज का समाज किन्नरों को समाज का हिस्सा मानने के लिए ही तैयार नहीं है। समाज में उपेक्षित किन्नरों के पास जीविका का कोई निश्चित साधन न होने के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। समाज द्वारा उनके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार तो दूर की बात वे उनसे बात करने से भी कतराते हैं। उन्हें न कोई नौकरी देता है, न सरकार की ओर उनके लिए कोई जीविका के साधन उपलब्ध हैं। इसलिए ट्रेन या बस स्टेशन पर पैसे माँगकर जीविका चलाने के सिवा उनके सामने कोई चारा नहीं रहता।

नीरजा माधव का प्रस्तुत उपन्यास उपेक्षित किन्नर जीवन को बेहतरीन ढंग से रु–ब–रु करता है। परिवार और समाज द्वारा उपेक्षित किन्नरों को भुगतनी पड़ने वाली पीड़ा, उनका जीवन संघर्ष, उनकी मानसिक दशा आदि विभिन्न पहलुओं पर लेखिका ने प्रकाश डाला है। उपेक्षित, हाशिए के किन्नर जीवन को साहित्य के केंद्र में लाने में नीरजा माधव का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जो समाज को किन्नरों की ओर देखने की नई दृष्टि प्रदान करता है।

की–वर्ड –नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास, 'यमदीप' में उपेक्षित किन्नर जीवन।

वर्तमान समय में हिंदी साहित्य में किन्नर–विमर्श

की जोरदार चर्चा है। किन्नर समस्याओं को लेकर अनेक साहित्यकार लिख रहे हैं। उपन्यासकार नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास भी उपेक्षित किन्नर जीवन पर आधारित है। इसके माध्यम से उन्होंने हाशिए के किन्नर समाज की विभिन्न समस्याओं को बेहतरीन ढंग से उठाया है। आज का समाज किन्नरों को समाज का हिस्सा मानने के लिए ही तैयार नहीं है। साथ ही समाज के इस उपेक्षित किन्नरों के पास जीविका का कोई निश्चित साधन न होने के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज उनके साथ व्यवहार करने के लिए परहेज करता है। न कोई उसे नौकरी देता है, न सरकार की ओर उनके लिए कोई जीविका के साधन उपलब्ध है। इसलिए ट्रेन या बस स्टेशन पर पैसे माँगकर जीविका चलाने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं रहता। बच्चे का जन्म या किसी शुभ अवसर पर अपने बेसूरे आवाज में नाच–गाना कर जीविका का साधन भी आज के आधुनिक युग में खत्म हो गया है। आज की फ्लैट संस्कृति में अपार्टमेंट में उन्हें कोई घूसने नहीं देता। इस संदर्भ नीरजा माधव लिखती है–"जब से शहरों में ऊँची–ऊँची बिल्डिगों की बढ़ोत्तरी हुई, उसके धंधे में मंदी आई है। पहले तो मुहल्ले में घुसते ही किसी न किसी से हँसी मजाक में पता चल जाता था कि किस घर में बच्चा पैदा हुआ है, अब तो बच्चे भी कम पैदा हो रहे हैं और उस पर से चार–पांच मंजिल वाली बिल्डिगों में तो उन्हें घूसने ही नहीं देता। सभी अपना–अपना दरवाजा बंद किए घरों में कैद । किसी को किसी से मतलब ही नहीं।"[1] ऐसी हालत में उन्हें जीविका चलाना बहुत मुश्किल हो गया है। इसलिए मजबूरन उन्हें पेट के लिए किसी के वासना का शिकार बनकर भयंकर यौन रोगों का शिकार बनना पड़ रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरों के गुरु याने महताब गुरु ने इस संदर्भ में चिंता व्यक्त की हुई दिखाई देती है। वे अपने चेलों को इससे दूर रहने की सलाह देते हुए कहते हैं–'जब से डाक्टर ने सोबराती को यौन रोग होने तथा उससे बचकर रहने की सलाह दी, तब से महताब गुरु अपने बस्ती के चेलों को लेकर चिंतित रहने लगे थे। पैसों के अभाव में अपने चेलों को दुष्कर्म में देख उनकी चिंता बढ़ गई तो उन्होंने गिरिया रखने की परंपरा को खुलेआम इजाजत दे दी। कम से कम एक व्यक्ति के साथ बंधकर उनका जीवन रोग–ग्रस्त तो नहीं होगा।"[2] इस प्रकार उपेक्षित किन्नरों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 15 अप्रैल, 2014 में उच्चतम न्यायालय के आदेश के अनुसार 'तीसरे लिंग' अर्थात 'थर्ड जेंडर' के रूप में उन्हें मान्यता मिल गई है फिर भी उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता। आज भी उन्हें वंचित ही जीवन जीना पड़ रहा है। भारत में करीब 50 लाख किन्नरों की आबादी है, फिर उनकी ओर इस व्यवस्था का ध्यान नहीं गया है। 'समाज में हिजड़ों को घृणा की नजरों से देखा जाता है। वे शिक्षा से वंचित रहते हैं। इसी कारण उन्हें कहीं नौकरी भी नहीं मिलती है। अगर शिक्षित भी हो तो भी कोई उन्हें नौकरी देने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इसलिए इनमें से अधिक लोग वैश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर बन जाते हैं।"[3] नीरजा माधव समेत कई हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से इस वंचित समाज की ओर अपना ध्यान खिंचने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से नारी विमर्श, दलित विमर्श, किसान विमर्श की तरह 'किन्नर विमर्श' विमर्श भी साहित्य के केंद्र में आ रहा है। हिंदी के मशहूर साहित्यकार इसमें योगदान दे रहे हैं। इस दृष्टि से चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', निर्मला भराड़िया का 'गुलाम मंडी', महेंद्र भीष्म का 'मैं पायल' तथा नीरजा माधव का 'यमदीप' आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यास माने जाते हैं। समाज में घृणा, तिरस्कार के कारण नारकीय जीवन जी रहे किन्नर जीवन का चित्रण इसमें मिलता है। इस तिरस्कृत जीवन से उन्हें भी घृणा होती है। इसलिए तो वे इस प्रकार के जीवन के लिए भगवान को भी कोसते हैं। इसलिए तो किसी किन्नर की मृत्यु होने पर अन्य किन्नर उन्हें जूतों से पीटते हैं, उस लाश पर थूकते हैं। अपना सारा गुस्सा वे निकालते हैं।

किसी को पता भी न चले इसलिए आधी रात को उसे दफनाया जाता है। समाज की उपेक्षा के कारण कितनी बड़ी जिंदगी से नफरत । अगला जन्म एक तो स्त्री का मिले या पुरुष का, इसलिए वे हमेशा नेक जीवन जीते हैं। खुद दुख भोगते हुए भी मानवीय भावना से समाज की ओर देखते हैं। मानवीय भावना से प्रसव वेदना से तड़पती पागल औरत की प्रसुति और उदार भावना से उसकी मासूम बच्ची के पालन–पोषण की जिम्मेदारी उठाना इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण माना जा सकता है। अपने तरह बच्ची को नरकीय जीवन जीना न पड़े, इसलिए भी वह सचेत दिखाई देती है। एक अच्छा इंसान बनाने लिए वह सोना को पढ़ाना चाहती है। उस पगली की बच्ची सोना को वह खेलने के लिए भी अपने पैर के चुंगरू देना उचित नहीं समझती। जब उसे अपनी इस गलती का एहसास होता है तब उसकी, हुई मनोदशा का चित्रण करते हुए उपन्यासकार लिखती हैं–'कभी–कभी उसके पैरों में घुंघरू बांधकर स्वयं ढोलक बजाती और वह उस पर कुछ देर थिरकती, पर अगले ही पल नाजबीबी जैसे सचेत हो उसे रोक देती। उसके पैरों से घुंघरू को इतनी शीघ्रता से खोलती जैसे वे घुंघरू नहीं, सोना के पैरों से लिपटे नाग हों।''[4] इस प्रकार नाजबीबी की नफरत उस घुंघरू से नहीं तो किन्नर जीवन की पीड़ाओं, दुख–दर्द से है। वह अच्छी तरह से जानती है कि एक बार उस बच्ची पर किन्नर का सिक्का पड़ गया तो जिंदगी भर नहीं मिटेगा। जिंदगी भर उसे समाज की नफरत का सामना करना पड़ेगा। किन्नरों के संदर्भ में समाज के इस गलत रवैये बारे में वंदना शर्मा कहती हैं– "सामाजिक पूर्वाग्रह से युक्त हमारा तथाकथित सभ्य समाज इस प्रजाति को हेय और घृणित दृष्टि से देखता है। ऐसे कई अवसर आते है जब उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है।''[5] इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में किन्नर जीवन की पीड़ा जगह–जगह पर मुखरित हुई दिखाई देती है।

उपन्यास के प्रारंभ में ही किन्नरों को शहर से दूर किस प्रकार गंदी बस्ती में अपना जीवन बिताना पड़ता है इसका बेहतरीन ढंग से चित्रण आया है। समाज उन्हें अपने साथ नहीं रहने देता। समाज की नजरों से दूर कहीं नदी–नालों के किनारे किन्नरों की बस्ती होती है। हर वंचित समाज को इसी प्रकार का गंदी बस्ती में जीवन जीना पड़ता है लेकिन उनसे कई गुना बदतर हालत किन्नरों की है। प्रस्तुत उपन्यास में वरुणा नदी के किनारे के किन्नर बस्ती का वर्णन उपन्यासकार ने किया है। किन्नरों की इस बस्ती में बारिश के दिनों में पानी घूस जाता है। इतना ही नही तो 'कभी–कभी किसी मृत मवेशी के महाभोज में कुत्ते–कौवों की छीन–झपट में वातावरण बोल उठता है, अन्यथा दूर–दूर तक फैली खामोशी में वरुणा नदी, चुपचाप लेटी रहती है और उसे अकसर अपनी छत से निहारा करती है नाजबीबी। उसी के पक्के घर से सटा है चमेली और शबनम का घर। मंजू का घर उसके पिछवाड़े है। बीस–पच्चीस छोटे–बड़े घरों वाली यह हिंजड़ा बस्ती शहर में रहते हुए भी शहर से बहुत दूर है। दिन भर अपने–अपने क्षेत्र में गा–बजाकर अपना जीवनयापन करनेवाले ये लोग आपस में मिल–जुलकर रहते हैं। एक–दूसरे के सुख–दुःख के बराबर के भागीदार।''[6] इस प्रकार किन्नरों को बहुत उपेक्षित जीवन जीना पड़ता है। हमेशा सार्वजनिक जीवन से दूर रखे जाने वाले किन्नरों को रहने के लिए दूर कहीं कोने में जगह मिलती है। फिर जीविका के लिए इस समाज को समाज के साथ ताल्लुक रखना ही पड़ता है।

समाज भी बहुत अजीब है, जो जीने वालों को ठीक से जीने नहीं देता और मरनेवालों को चैन से मरने नहीं देता। फिर भी समाज में रहने के लिए न चाहते हुए भी समाज की कुछ बातों को मानना ही पड़ता है, नहीं तो समाज उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से बहिष्कृत कर देता है। इसका सबसे ज्यादा खामियाजा किन्नर समाज को भुगतना पड़ता है। समाज की आलोचना के डर से न चाहते हुए भी परिवार वाले अपने किन्नर बच्चों को त्याग देते हैं। समाज के सामने उनका नाइलाज हो जाता है, नहीं तो समाज की उपेक्षा से तंग आकर खुद

ऐसे किन्नर बच्चे घर को त्याग देते हैं। एक बार उनका घर छूट गया तो फिर वापसी का रास्ता हमेशा के लिए बंद हो जाता है। यह बात प्रस्तुत उपन्यास में नाजबीबी और छैलू के संदर्भ में भी होती है। दोनों के माता–पिता उन्हें त्यागने के लिए तैयार नहीं थे। वे उनकी परवरिश करना चाहते हैं। नाजबीबी के संदर्भ में विचार किया जाए तो वह अच्छे घर की लड़की है। माता–पिता उन्हें उसकी असली पहचान छिपाकर लड़कियों के साथ पढ़ाते हैं लेकिन भेद खुल जाने से आठवीं से उसकी पढ़ाई छूट जाती है। यही बात छैलू के संदर्भ में भी होती है। छैलू के माता–पिता उसकी आम बच्चे की तरह परवरिश करते हैं। बड़ा होकर छैलू अस्पताल में वार्डब्वॉय की नौकरी करने लगता है। समय के साथ छैलू के शरीर में किन्नर की तरह शारीरिक बदलाव दिखना शुरू होने पर समाज उन्हें तिरस्कृत नजरों से देखना शुरू करता है। इस तिरस्कृत नजरों से बचने के लिए छैलू को घर त्यागकर हिजड़ों की बस्ती जाकर रहने को मजबूर होना पड़ता है। समाज के सामने छैलू की इस मजबूरी का चित्रण करते हुए उपन्यासकार नीरजा माधव लिखती हैं–'ठिंगने कद का स्वस्थ सांवला छैलू टी दो वर्ष पहले उनकी बस्ती में आया है। बीस–बाईस वर्ष का छैलू इलाहाबाद के किसी अस्पताल में वार्डब्वाय था। बेटे के मोह में छैलबिहारी के माता–पिता उसकी वास्तविकता जानते हुए भी अपने से अलग करने का साहस नहीं जुटा सके थे। परंतु धीरे–धीरे समाज में इस भेद के खुल जाने और परिवार की बदनामी होते देख छैलबिहारी स्वयं एक दिन अपने नियत स्थान आ गया था और छैलबिहारी से छैलू हो गया था।''[7] इस प्रकार छैलबिहारी से छैलू बनने के बाद नियति के सामने आँसू बहाने के सिवाय उसके सामने कोई चारा नहीं रहता। अन्य किन्नरों की तरह बाहर कमाने के लिए जाने की भी उसकी हिम्मत नहीं होती। इसलिए किन्नरों की बस्ती में बुजुर्ग सोबराती की सेवा करने का काम उसे करना पड़ता है। इसप्रकार कितने किन्नर समाज में उपेक्षित जीवन जी रहे हैं। उन्हें घर–परिवार से तोड़ने को कौन जिम्मेदार है? यह समाज ही तो ना। इसे समाज की क्रूरता नही तो क्या कहना पड़ेगा? चाहते हुए भी उन माता–पिता और बच्चों की खुशी छीन लेते हैं। क्या किन्नरों की बस्ती में रहने के लिए आने के बाद माता–पिता और संबंधित बच्चे की पुरानी यादें मिट जाती हैं? प्रस्तुत उपन्यास में भी नाजबीबी के संदर्भ में भी यही होता है। नाजबीबी हिजड़ों की बस्ती में रहने के लिए जाने के बाद भी उसके माता–पिता बीच–बीच में चोरी–छिपे अपने बच्ची को मिलने आते हैं। तो दूसरी ओर नाजबीबी भी बीच–बीच में अपने माता–पिता को बीच–बीच में चुपके से टेलीफोन बुथ से फोन करती है। यह बात महताब गुरु के समझ में आती है तब वे उसे समझाते हुए कहते हैं–"देखो, अब यही दुनिया तुम्हारी है। आज से भूल जाओ कि तुम कहां पैदा हुई। कौन–मां बाप हैं। इसी में तुम्हारी भी भलाई है, उनकी भी। नहीं तो बदनामी और दुःख को छोड़ कुछ नहीं मिलेगा। बेसरा माता की शरण में आ गई हो, अगला जनम सुधारो। अपना नाम तक भूल जाओ आज से।''[8] महताब गुरु की इस बात में सच्चाई हैं। क्योंकि उन्होंने किन्नर होने के नाते समाज की बहुत–सी यातनाओं, पीड़ाओं और उपेक्षा का सामना किया है। वे अच्छे से जानते हैं कि नाजबीबी के कितना भी दुख करने के बावजूद समाज उन्हें स्वीकार नहीं करेगा।

इस प्रकार किन्नरों की उपेक्षा के संदर्भ में कई बातें प्रस्तुत उपन्यास में मिलती हैं। धीरे–धीरे नाजबीबी इस वातावरण में घुल–मिल जाती हैं। अन्य किन्नरों की तरह पेट के लिए उसका संघर्ष शुरू हो जाता है। समाज में किन्नरों की दशा संदर्भ में प्रकाश शेलके लिखते हैं–"भारतीय समाज व्यवस्था में किन्नर समाज आज भी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कर रहा है। आज भी किन्नरों को देखते ही लोग मुंह मोड़ लेते हैं और कभी–कभी उनको अनाप–शनाप गाली दे देते हैं।''[9] इस प्रकार किन्नरों को अपनी जीविका के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

एक तो समाज में उपेक्षा दूसरी ओर पापी पेट का सवाल किन्नरों का जीना हराम कर देता है। इसके भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत उपन्यास में मिलते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चमेली इस संदर्भ में कहती है, "सोचते हम भी हैं, नाज। पर तन तो भगवान ने आधा टुकड़ा बनाया कि किसी लायक नहीं रहे और पेट...? पेट तो नहीं बंद करके भेजा। वह तो खुला ही है। रोज भरो, रोज खाली। उसे भी काटकर या सीकर भेजता तो कम से कम बस जीना ही तो रहता।"[10] चमेली के इस मंतव्य में कितनी बड़ी वेदना, पीड़ा छिपी हुई है। दुनिया तो स्त्री और पुरुष को ही इस सृष्टि का आधार मानती हैं लेकिन किन्नरों का कहीं उल्लेख भी नहीं आता। वह हमेशा ऐसे किन्नरों से बचकर रहना चाहता है। प्रस्तुत उपन्यास की महिला पत्रकार मानवी की भी शुरू में पत्रकार बनने से पहले ऐसी ही हालत थी। उसे भी किन्नरों के व्यवहार को देखकर तरस आती थी लेकिन खबर के सिलसिले में जब हिजड़ों के बस्ती में जाती है तब वह उनके असली जीवन से मुखातिब होती है। पत्रकार बनने से पहले की मानवी के किन्नरों के संदर्भ में दृष्टिकोन को चित्रित करते हुए उपन्यासकार लिखती हैं–'पहले सड़क या गली–मोहल्लों में इनके समूह का हठ और हरकतें देखकर वह सहम जाती। एक वितृष्णा और भय का मिला–जुला असर मन को अंदर से जकड़ लेता। न पुरुष, न स्त्री.... या फिर शायद पुरुष और स्त्री दोनों ही। यानी अर्धनारीश्वर...नहीं... पूरी देह का विभाजन ऐसा नहीं इनका कि यह संज्ञा दी जा सके। कहीं दाढ़ी–मूंछ पूरे चेहरे पर तो कहीं उरोजों का उभार संपूर्ण स्त्री की तरह।"[11] इस प्रकार शरीर–रचना, चाल–चलन, हाव–भाव के कारण समाज उनकी उपेक्षा करता है। आज समाज तो किसी तरह उससे दूर भागना चाहता है। ऐसी हालत में उन्हें समाज का प्यार और संवेदना मिलना तो दूर की बात है। इस तुलना में पुराना जमाना थोड़ा अलग था। कम से कम राजा–महाराजाओं के काल में उन पर रानियों के महलों की रक्षा तथा गुप्तचरी का काम सौंपा जाता था। लोग हिजड़ों के आशीर्वाद शगुन मानते थे। बच्चे का जन्म तथा अन्य शुभ अवसरों पर उनकी अच्छी–खासी कमाई होती थी तथा किन्नरों की जीविका ठीक से चलती थी। आज परिस्थिति इतनी बदली है कि किन्नरों को उपेक्षा के सिवा कुछ नहीं मिलता। इस संदर्भ में महताब गुरु कहते हैं–'अरे बाबूजी, कोई इंसान जल्दी अपने घर में किसी हिंजड़े को किरायेदार नहीं बनाता। वो एक जमाना था जब कुछ राजे–महाराजे अपनी रानियों की रखवाली के लिए अपनी हरम में हम हिजड़ों को रखते थे। रानियों के साथ हिंजड़े क्या कर पाते?..पर अब तो जमाना वो आ गया कि आजकल के इनसान हिंजड़ों तक को नहीं छोड़ते। रात में कभी–कभार हमने अपने बस्ती वालों को कई बार ट्रकवालों और पुलिसवालों के साथ पकड़ा भी है।"[12] इस प्रकार वर्तमान समाज में किन्नरों को बहुत बदतर जीवन जीना पड़ रहा है।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नीरजा माधव ने 'यमदीप' उपन्यास में उपेक्षित किन्नर जीवन का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है, जो किन्नर जीवन को बेहतरीन ढंग से रू–ब–रू कराता है। घर और समाज से उपेक्षित किन्नर किस प्रकार पीड़ित जीवन जीता है इसे लेखिका ने यहाँ पर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से किन्नर जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। उपेक्षित, हाशिए के किन्नर जीवन को साहित्य के केंद्र में लाने में नीरजा माधव का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जो समाज को किन्नरों की ओर देखने की नई दृष्टि प्रदान करता है।

हिंदी विभाग प्रमुख,
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय,
हलकर्णी, ता. चंदगड
जिला–कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
दूरभाष – 9448863717

संदर्भः—

1. नीरजा माधव, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 42
2. वही, पृ. 29
3. सं. मिलन बिश्नोई, किन्नर विमर्श : साहित्य और समाज, विद्या प्रकाशन, गुजैनी, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. 122
4. नीरजा माधव, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 68
5. सं. एस.वाय. होनगेकर, डॉ. आरिफ महात, विश्वनाथ सुतार, 21 वीं शती का हिंदी साहित्य : नव विमर्श, ए.बी. एस., पब्लिकेशन, वाराणसी, सं. 2018, पृ. 65
6. नीरजा माधव, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 16
7. वही, पृ. 16—17
8. वही, पृ. 81
9. सं. मिलन बिश्नोई, किन्नर विमर्श : साहित्य और समाज, विद्या प्रकाशन, गुजैनी, कानपुर, प्रथम संस्करण 2018, पृ. 307
10. नीरजा माधव, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं. 2018, पृ. 27
11. वही, पृ. 160
12. वही, पृ. 94

पृथ्वी के बर्बरता पूर्ण संहार की दृश्यात्मक त्रासदी की अभिव्यक्ति—'कागज एक पेड़ है'

– शेखर

वैचारिक एवं प्रबोधनकारी कविताओं की बुनावट किस तरह की होती है या किस तरह वह आशय से परिपक्व, समृद्ध एवं ठोस आकार ग्रहण कर रंजक प्रधानता को लताड़ते हुए आभासी रूतबे को ठोकर लगाती है, इस बात और यथार्थ को प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष रख पाना मेरे बस की बात नहीं है, यह तो बखूबी और क्रमवार सृजक ही बताने के लिए उपयुक्त है, इस बात पर मेरा दृढ़ विश्वास है किन्तु बिम्ब, प्रतीक, प्रतिमाएँ, भाषा, शैली, चिंतन, चिंता एवं प्रस्तुति के ढंग व सांचे के साथ—साथ ठोस वैचारिकता से लबालब नाट्यमयता के गुण भी कविता को विशिष्टता प्रदान करने में सहायक होते है, यह बात तो निश्चित तौर पर कही ही जा सकती है और शायद यही वजह है कि कविता का सर्वंकष मूल्यांकन की हठधर्मिता औंधे मुँह गिर पड़ती है। कविता में विचार, दर्शन, समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान, हास्य—व्यंग्य, अर्थशास्त्र, विज्ञान दृष्टि, समकाल, राजनीति शास्त्र और कवि की इन सब विषयों पर अपनी दृष्टि, उसका अपना निष्कर्ष, अपनी समझ, अपना आकलन आदि सब कुछ समाया होता है और इन सब बातों में कविता का प्रस्थान बिन्दु या लक्ष्य सबसे मथिक निष्ठावान होना जरूरी हो जाता है, इसीलिए दलित साहित्य की कविता विधा में भी आम्बेडकरवादी विवेकशीलता का अपना महत्व एवं योगदान रहा है, जिसे कवि डॉ. मुकेश मानस की कविताओं में स्पष्टता से देखा और परखा जा सकता है।

कवि डॉ. मुकेश मानस की कविताओं के आन्दोलनधर्मी तेवरों के लक्षित उद्देश्यों को जानने एवं समझने के लिए मुझे उनकी ''तुम्हारे पास'' शीर्षक की कविता का निम्न शब्द समुच्चय महत्वपूर्ण जान पड़ता है, जिसमें वे स्पष्टता से कहते है कि,

''तुम्हारे पास दर्द है, भूख है, क्रान्ति है...,तुम्हारे शब्द, तुम्हारे गीत, तुम्हारे हाथ ही ढाल है।''
(पेज नं. 48)

भारतवर्ष की कला, संस्कृति, भाषा, दर्शन, अर्थव्यवस्था, सामाजिक स्तर एवं व्यक्ति के दैनिक जीवन पर धर्म विशेष के अत्यधिक प्रभाव के फलस्वरूप उपजा राष्ट्र चेतना का अभाव स्पष्टता से दिखाई देता है, जिसकी ओर स्पष्टता से निर्देश कर कवि डॉ. मुकेश मानस की कविता व्यंगात्मक शैली में धर्म को खारिज करने के उद्देश्य से पाठकों को जाग्रत करने की तमन्ना से कहती है कि,

''राजा जनता रोती है,
रोती है तो और रूलाओ....
मार—मूरकर उसे भगाओ.....
गोली से तो अच्छा प्यारे

इस जनता को धर्म दिखाओ...

(''राजा और बाजा : दो'' पेज नं. 64 और 65)

(कवि मुकेश मानस जी की उपरोक्त कविता पढ़ते हुए मुझे अनायास कवि जगदीश पंकज जी की कविता की एक पंक्ति याद आती है, जिसमें वे कहते है कि,

''राजाजी'', अपने वादों से,
कितने दिन भरमायोगें?
गंगू पूछ रहा है, भैया,
कब अच्छे दिन आयेगें।'')

कवि मुकेश मानस की कविताओं में व्यंग्य, उपहास और कटाक्ष की अनेक धारदार परतें दिखाई देती है, जिसके द्वारा वे सामाजिक स्वतंत्रता एवं समता बोध को स्पष्टता से रेखांकित कर कहते है कि,

''उसने मेरा नाम नहीं पूछा
मेरा काम नहीं पूछा
पूछी एक बात
क्या है मेरी जात.....
उसने तेजी से किया अट्टहास
उस अट्टहास में था,
मेरे उपहास का एक लम्बा इतिहास''

(''मनुवादी : एक'' पेज नं. 49)

भारतवर्ष की दो राजनीतिक पार्टियों में से एक अक्सर गुजरात का मुद्दा उछाल देती है तो दूसरी इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात् उपजी हिंसाचार, नरसंहार का मुद्दा उठाकर जनता का विभाजन कर देती है और इन दोनों का उद्देश्य सामाजिक सौहार्द्र का ना होकर अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है। भारत में वर्ष दो हजार दो या गुजरात दर्द भरा मुहावरा बन चुका है उसी तरह 'सन् 1984' भी मुहावरे में तब्दील हो चुका है, ''कागज एक पेड़ है'' कविता संग्रह में गुजरात नरसंहार पर केन्द्रित चार कविताए सम्मिलित है, जिसमें से 'गुजरात : एक' शीर्षक की कविता कहती है कि,

''यह एक बच्चे की फोटो है....
वैसे बहुत कुछ नहीं है इस फोटो में
मसलन बच्चे की इस फोटो में
बच्चा नहीं है
उसकी इच्छाएं, उसके सपने, उसका भविष्य
कुछ भी तो नहीं है
क्या आप बता सकते हैं
कि इन दो मासूम और प्यारी आँखों में
ये निर्जीवता, ये मुर्दनी सी क्यों है
एक ऐतिहासिक विडम्बना है ये
कि वयस्कों की समस्त बुद्धिमता और भाषा
उस पीड़ा को बयां नहीं कर सकते
जिसे झेल रहा है, ये छोटा बच्चा.....''

(''गुजरात : एक'' पेज नं. 41 और 42)

हमारे पुरखों ने स्वतंत्रता, समता का नक्शा बनाकर समृद्ध भारत के सपनों को साकार करने का प्रयास किया था, हमारे पुरखे एवं कवि रैदास जी ने पन्द्रहवीं सदी में ही स्पष्टता से कहा था कि,

''ऐसा चाहू राज मैं,
जहाँ मिले सबन को अन्न
छोटे–बड़े सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न''

किन्तु भारतवर्ष में उनके अरमान आज तक पूरे नहीं हो पाए है, जिसकी वजह है, मन का चंगा ना होना। 'मन चंगा तो, कठौती में गंगा'' आज के युग में केवल मुहावरा बनकर रह गया है। वह जीवन शैली और मनुष्य के आचरण का विषय अब तक नहीं हो पाया है। इसी वजह से सिद्धांत और व्यवहार में फर्क दिखाई देता है। इसी विडम्बनाओं को रेखांकित कर और मनुष्य की करनी और कथनी में दिखाई देने वाले फर्क को निर्भीकता से धिक्कारते हुए व्यंग्यात्मक शैली में कवि मुकेश मानस की कविता बेबाकी से कहती है कि,

1. ''पार्टी के भीतर, वो होते है,
एकदम डी क्लास
पार्टी के बाहर वो होते है
खुद एक क्लास''

(''नकली मार्क्सवादी'', पेज नं. 70)

2. ''जनवाद के शीशे में
दिखते हैं आजकल कई–कई चेहरे
अवसरवाद के''

(''राजनीति'' पेज नं. 61)

आदमी के भीतर–बाहर से चंगा होने की बात से एक प्रसंग मुझे याद आ रहा है कि डॉ. मुकेशजी ने अपनी एक पुस्तक उनके गाईड रहे नरेन्द्र कोहली जी को समर्पित की थी, तथाकथित मार्क्सवादी विचारधारा के लेखकों को यह बात नागवार गुजरी थी और किसी अन्य विषयों पर केन्द्रित विचार गोष्ठी में यह मुद्दा उन्होंने उछाला था, उन्होंने इस मुद्दे पर डॉ. मुकेश मानस को घेरकर उनसे स्पष्टीकरण भी नहीं सुनना पसंद किया था....इस तरह की हठधर्मिता निःसंदेह हानिकारक है किन्तु डॉ. कोहली के प्रति आदर व्यक्त करने के मुद्दे पर डॉ. मुकेश मानस की प्रतिबद्धता को खारिज करने को उतावले आलोचक जब उन पर ही उँगली उठने लगती है तो वे अपनी बात, अपना पक्ष रखने की मुहलत माँगते है, और सहजता से उन्हें स्पेस भी उपलब्ध हो जाता है, खैर..

कवि मुकेश मानस की कविताएं पढ़ने का अवसर डॉक्टर अर्चना वर्मा को संभव हो पाया या नहीं कुछ कहा नहीं जा सकता, किन्तु स्मृतिशेष कवि केदारनाथ सिंह की कविताओं के संदर्भ में वे कहती है कि,

''मेरी पीढ़ी के लिए जुनून की हद तक कविता के प्रेमी पाठक होने की किशोर उम्र में तब के युवा कवि केदारनाथ सिंह की पहली किताब ''अभी बिलकुल अभी'' हमें हमारे मन की बेचैनी और अधीरता का पता देती थी और उनकी मशहूर कविता,

''तुमने जहाँ लिखा प्यार,
वहाँ लिख दो सड़क, फर्क नहीं पड़ता
मेरे युग का मुहावरा है
फर्क नहीं पड़ता।''

(''संदर्भ, कथादेश'' मई 2018)

कवि केदारनाथ सिंह ने ''फर्क नहीं पड़ता'' किस दृष्टिकोण को अपने जेहन में रखकर अपनी युवावस्था में उपरोक्त कविता का सृजन किया होगा, कुछ ठीक से कहा नहीं जा सकता। यह व्यंगात्मक लहजे में भी लिखे होने की संभावना है, आहत मन से व्यक्त विचार भी हो सकता है अथवा बदलाव और हस्तक्षेप के प्रति आश्वस्त ना होने के भाव की भी यह अभिव्यक्ति हो सकती है। तात्पर्य यह है कि पाठक अपनी अभिरुचि के हिसाब से उपरोक्त पंक्ति की व्याख्या करने को स्वतंत्र है। याने अनेक संभावनाएं उस एक पंक्ति में निहित है। कवि आनन्द बक्षी ने भी 'कुछ फर्क नहीं' नाम तेरा रजिया हो या बाधा गीत में केदारजी की बात का समर्थन किया जान पड़ता है।

किन्तु मैं जब 'काग़ज एक पेड़ है' कविता संग्रह के ठोस मुहावरा बने शीर्षक को देखता और पढ़ता हूँ तो मुझमें भ्रमित होने की दूर–दूर तक कोई संभावना नजर नहीं आती। इस शीर्षक से एक ही ठोस आशय व्यक्त होता है, जिसे विस्तार से समझाते हुए कवि कहते है कि,

''कागज फाड़ना शुरू करते ही
पेड़ की मजबूत गठीली शाखों पर
महकती हुई खूबसूरत पत्तियाँ
पीली पड़ने लगती है
और धुंधलाने लगता है शाखाओं का गाढ़ा रंग...
महज एक फालतू कागज फाड़ते ही...
बरसों पुराना एक पेड़
अंधकार में विलीन हो जाता है चुपचाप''

(''कागज एक पेड़ है'', पेज नं. 77)

बुद्ध का अनित्यता का सिद्धांत बड़ा ही चर्चित एवं प्रसिद्ध है। कवि मुकेश मानस की ''आजकल'' कविता के सृजन प्रक्रिया में कारक तत्वों का पता लगाना असंभव है, किन्तु इस कविता में व्यक्त आशय बड़ी ही संवेदनशीलता से मुझ तक पहुँचा है, यह कविता कहती है कि,

''मैंने लिखा एक शब्द
और शब्द अर्थहीन हो गया...
आजकल की दुनिया
तेजी से बदल रही है।'' ('आजकल' पेज नं. 73)

आधनुनिक कविताओं द्वारा शहरों पर मुखर टिप्पणियाँ और व्याख्याए पाठको और श्रोताओं को उपलब्ध होती है। 'कागज एक पेड़ है' कविता संग्रह में भी शहरों का जिक्र मिलता है। कवि नामदेव ढसाल के कविता संग्रह 'गोलपीठा' की भूमिका लिखने वाले नाटककार विजय तेंदुलकर बम्बई शहर का अपरिचित

यथार्थ देखकर अवाक रह जाते है, स्मृतिशेष कवि जयप्रकाश लीलवान शहरों पर अपनी तरह से सटिक भाष्य करते है, वे शहरों के सम्बन्ध में कहते है कि,

''शहरों में आदमी ढूँढ़ना, निरर्थकता है...
शहर, त्रासदियों के फूलों का बाग है....
भविष्य की पाण्डुलिपि है
मेरे समय के शहर''

किन्तु कवि मुकेश मानस की कविता शहरों के माध्यम से असंतुलित जनसंख्या की समस्या की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट कर उन्हें जनसंख्या के नियंत्रण में सहयोग देने का अनुरोध कर कहती है कि,

''इतने बड़े शहर में
अब किस–किस को पहचाने
और किस–किस को प्यार करें''

(''कुसूर'', पेज नं. 75)

अथवा

''कंक्रीट का जंगल है ये शहर
मैं जिसमें रहता हूँ
हर तरफ पत्थर, कंक्रीट और कोलतार
मैं इन्हीं के बीच जीता हूँ''

(''शहर में धूल'' पेज नं. 53)

या ''दिल्ली की सड़कें और इमारतें
लील गई
दिल्ली के सारे मोर'' (''सपने में मोर'' पेज नं. 16)

अथवा

''अब यहाँ पसरा है, अन्धेरा ही अन्धेरा
इसमें कुछ नहीं देता दिखाई
न फूल, न चेहरा, न रास्ता
और न कोई दोस्त'' (''ये कौन सा शहर है'', पेज नं. 131)

कवि मुकेश मानस की कविता की विशेषता यह है कि वह संयत भाषा में आशय को व्यक्त कर मध्यम मार्ग का चुनाव करते हुए निर्भीकता से कहती है कि,

''तुमने नापे कितने पर्वत
ऊँचे और विशाल....
पर आज ये तुमने क्या कर डाला
तोपें, गन और टैंक बनाकर ?

(''मानव'' पेज नं. 32 और 33)

भारत का शिक्षा विभाग अपने कर्तव्य और उद्देश्यों से भटक गया है, शिक्षा को व्यापार बना दिया गया है। आज की शिक्षा पद्धति के हृदय परिवर्तन की आस लगाए कवि मुकेश मानस जी की कविता सकारात्मक बदलाव लाने हेतु भारत की प्रबुद्ध जनता को शिक्षा के खस्ता हालात के दर्शन कराते हुए निर्भीकता से कहती है कि,

1. ''बोयेगा किताबों को, ढोयेगा किताबों को
इक्कीस का पट्ठा''

(''इक्कीस का पट्ठा'' पेज नं. 60)

2. ''स्कूल जहाँ पिंजरा बन जाये
और किताबें केवल बोझ
कमर टूट जाये बच्चों की
ऐसी शिक्षा है एक रोग''

(''स्कूल पर आल्हा'' पेज नं. 34)

कवि मुकेश मानस की कविताओं ने हिन्दी साहित्य में निश्चित रूप से अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है, किन्तु यह क्रम 'कागज एक पेड़ है' कविता संग्रह की कुछ कविताओं में बने बनाए साँचे के प्रयोग के कारण शिथल होता हुआ दिखाई देता है, मेरी बात की पुष्टि हेतु कुछ कविताओं का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है कविता की बुनावट उसकी प्रस्तुति का ढंग और अभिव्यक्ति की शैली कहीं–कहीं अपना रूतबा खोते हुए दिखती है–

जैसे –''हत्यारा आता हे, हत्या करता है
और चला जाता है.....

(''हत्यारा'' पेज नं. 27)

अथवा

''एक औरत हँसने का प्रयास करती है
दूसरी हँसने के नाम पर शरमाती है
तिसरी उसके शर्म पर खिलखिलाती है
चौथी तो हँसते हुए
किसी भेड़ सी मिमियाती है

(''पार्क में हँसी'', पेज नं. 36)

या

''कुछ लोग रामलीला करते है
कुछ लोग रामलीला देखते है
कुछ लोग
ना तो रामलीला करते है
और ना रामलीला देखते है
वे रामलीला बेचते है''

(''रामलीला की दुकान'' पेज नं. 82)

कवि की दृष्टि में कविता समय गुजारने की फालतू रुचि का नहीं अपितु उसके जीवन संकल्प की प्रतिबद्धता से लगाव का विषय और पहचान का विराट दायरा होना चाहिए कविता में यदि प्रेरक एवं उद्‌बोधक अभिव्यक्ति हो तो वह चेतना का सार्थक कार्य करती है। कविता दुनियां में व्याप्त उदासीनता भय एवं शून्यता के जख्मों को संवेदनशीलता से भरने को व्याकुल होती है तथा सामाजिक मूल्यों का संवर्धन करने हेतु अपना अंशदान देती है। कविता मुखौटों एवं रहस्यों के धूर्त आवरणों से ढके दमन की व्यवस्था के चालबाज परतों को दृढ़ता से हटाती है, उसका उद्‌घाटन करती है और यह जोखिम एवं मुश्किल साध्य भरा कार्य कवि मुकेश मानस की कविता दृढ़निश्चयी सहजता से करती है और गंभीरता से बतियाते हुए दमन की विरासत को ध्वस्त करने हेतु दृढ़ संकल्प से लेस होकर साहित्य शिल्प के औजारों के मार्फत सदियों से उजड़े और उत्पीड़ित समाज के जीवन में निर्णायक बदलाव लाने हेतु आशावादी उमंगों को आश्वस्त कर निर्भीकता से कहती है कि,

''सूरज के हकदार हो तुम
अगर तुम आग में तपे सपनों को
सूरज में बदल सकते हो''

(''सूरज के हकदार हो तुम'' पेज नं. 80)

पृथ्वी पर जीवन का अक्षुण्ण रहना जरूरी है। पेड़ों के बर्बरतापूर्ण संहार से पक्षियों के घोंसले उनका प्रकृति प्रदत्त निवास नष्ट हो रहा है। 'कागज एक पेड़ है' कविता संग्रह की शीर्षक कविता पृथ्वी के बर्बरता पूर्ण संहार का भयावह दृश्य समग्रता से उपस्थित करती है। सता अथवा कुर्सी की विनाशकारी ललक किस तरह घातक है इस बात को 'आरा मशीन' शीर्षक की कविता में कवि डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी स्पष्टता से रेखांकित कर व्यंग्यात्मक शैली में राजनीति पर चोट करते है। डॉ. तिवारी ने साहित्य अकादमी के अध्यक्ष रहते हुए '1950 से लेकर 2010 के साठ वर्षों की आधुनिक कविता संचयन का सम्पादन प्रो. रेवती रमन की सहायता से वर्ष 2012 में किया था। डॉ. तिवारी ने सम्पादकीय में प्रोफेसर नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव का जिक्र करना उचित नहीं समझा। इस 'कविता संचयन'में केवल 6 कवियित्री की कविता को सम्मिलित किया गया है। किन्तु इस कविता संग्रह में प्रखर प्रतिपक्ष के रूप में उभरी एक भी दलित आदिवासी कविता ढूंढ़ने से भी दिखाई नहीं देती। इस बात को सम्पादक की विवशता नहीं कही जा सकती। इस संग्रह में सोलह कवियों के केवल एक तथा अन्य 66 (छियासठ) कवियों की एक से अधिक कविता को स्थान मिला है, यह सरासर मानक की खिलाफत और पक्षपात है। परन्तु कवि मुकेश मानस जी की कविताएं पृथ्वी का संवर्धन करने हेतु पाठकों को जागृत करती है, मनुष्य की स्वतंत्रता एवं विवेक को उभारने को छटपटाती है। मानवता का शिल्प एवं दृश्य उकेरने की चेतना जगाती है और इन्सानियत की किसी भी हालत में मौत ना होने देने का संकल्प कर स्वतंत्रता एवं समता से परिपूर्ण लोकतंत्र को संवारने हेतु अपनी भूमिका का निष्ठापूर्वक निर्वाह करती हैं इसीलिए हम कह सकते है कि कवि डॉ. मुकेश मानस का कविता संग्रह 'कागज एक पेड़ है' असल में पृथ्वी के बर्बतारपूर्ण है दोहन से उपजे क्रूरतम संहार की संवेदनशील किन्तु बेबाक अभिव्यक्ति है।

ए–106, हिल अपार्टमेंट, रोहिणी, सेक्टर–13
दिल्ली–110085
मोबा. 09873843656

पुस्तक	–	''कागज एक पेड़ है'' (कविता संग्रह)
लेखक	–	डॉ (प्रो.) मुकेश मानस सत्यवती कॉलेज, अशोक विहार (दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध) दिल्ली–110052
मोबा.	–	09873134564
प्रकाशक	–	लोकमित्र प्रकाशन 1/6588, पूर्वी रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110032
फोन	–	011–22328142, 09910 343376 00
प्रथम संस्करण	–	2010, दूसरी आवृति–2012
मूल्य	–	60 रूपये मात्र

सहज, सरल व्यक्तित्व के धनी राजनीति में सादगी के प्रतीक पूर्व राज्यपाल एवं दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर श्रद्धेय डॉ. माताप्रसादजी का दिनांक 19 जनवरी 2021 को परिनिर्वाण हो गया। भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश उज्जैन की मासिक पत्रिका ''आश्वस्त'' को उनका सदैव आशीर्वाद रहा है। उनके परिनिर्वाण पर उन्हें विनम्र भावांजलि अर्पित करते हुए उनकी एक भेंटवार्ता जो जुलाई 2011 में आयु. सोहनपाल सुबुद्ध के साथ साक्षात्कार के रूप में ली गई थी, पुनः प्रस्तुत है :–

भेंटवार्ता

सोहनलाल सुबुद्ध कवि एवं साहित्यकार द्वारा सुप्रसिद्ध दलित साहित्यकार डॉ. माताप्रसाद से दलित साहित्य के सम्बन्ध में लिये गये साक्षात्कार का विवरण।

सुबुद्ध : आपने सर्वप्रथम हिन्दी की कौनसी कविता लिखी थी ?

डॉ. माताप्रसाद : मैंने सन् 1947 ई. में हिन्दी का एक कवित्त पहले पहल लिखा था। मैं सन् 1946 ई. में जौनपुर जिले के बेलवा प्राइमरी स्कूल में अध्यापक

नियुक्त हुआ, उसके हेडमास्टर श्री हनुमन्ता सिंह थे जो एक छोटे– मोटे जमींदार थे। उस समय आजादी का आंदोलन जोरों पर था। श्री हनुमन्ता सिंह आजादी एवं आंदोलन की हँसी उड़ाते थे और तिरंगे का मजाक करत थे। मैं आजादी का समर्थक था। एक दिन श्री हनुमनता सिंह ने एक कवित्त बनाकर मुझे सुनाया जिसमें पं. जवाहर लाल नेहरू की आलोचना थी और तिरंगे को लत्ता कहा था। उसका केवल एक चरण मुझे याद है जिसमें उन्होंने लिखा था, ''जिन्ना और जवाहरलाल काल भये भारत के'' इसके बाद का अंश मुझे स्मरण नहीं है। सन् 1947 ई. 15 अगस्त को जब देश आजाद होने वाला था मैंने भी एक कवित्त श्री हनुमन्ता सिंह की प्रतिक्रिया में लिखा जिसके नीचे की दो पंक्तियां मुझे याद हैं, जिसमें मैंने लिखा था–''देखि जिस तिरंगे की हँसी सब उड़ावत रहे, आज उस तिरंगे को शीश सब झुकाय रहे। लीग, कम्युनिस्ट, कांग्रेस डिपरेस्ड क्लास आज हिन्द बीच सभी खुशिया मनाय रहे।

इसके बाद मैंने कांग्रेस की बड़ी सभाओं में लोक गीतकार रामकुमार वैद्य के गीतों को सुना जो जनता को घंटों बांधे रखते थे उन्हीं के अनुकरण पर मैंने समाज सुधार और उनके जागरण के अनेक लोकगीत लिखे जो पहले पहल सन् 1949 में प्रकाशित हुए, इसके पश्चात मैं 'एकलव्य' के साथ अन्याय से प्रभावित था उस पर एक खण्डकाव्य लिखा।

सुबुद्ध : मैं आपको साहित्यकार पहले मानता हूं और राजनीतिज्ञ बाद में, क्या आप इस बात से सहमत हैं?

डॉ. माताप्रसाद : कुछ अंश तक आपका कथन सत्य है। जब मैं दलितों के सामाजिक सुधार का लोकगीत लिखने लगा तो सभाओं में मैं उसे सुनाता भी था, उसे सुनकर लोग प्रभावित होते थे। सन् 1955 ई. में मैं जूनियर हाईस्कूल कुँवरपुर का हेडमास्टर हो गया। मेरे सम्बन्ध में जौनपुर जिले के मछली शहर निवासी श्री रऊफ जाफरी साहब जो कांग्रेस के बड़े नेता थे उन्हें जानकारी मिली उन्होंने मुझे बुलवाया और अध्यापक की नौकरी छोड़ देने को कहा। उसके विकल्प के रूप में मुझे समाज कल्याण विभाग में सोशल वर्कर होने का अवसर दिया जिसमें मुझे 90/– रु. मासिक मिलने लगे। इसी के साथ मैं जिला कांग्रेस कमेटी जौनपुर में मंत्री भी बना दिया गया। मैं मछली शहर पूरे क्षेत्र का दौरा करता था। सन 1957 ई. में जब विधानसभा का चुनाव आया तो मुझे जौनपुर जिले की शाहगंज सीट से कांग्रेस का टिकट दे दिया गया, मैं चुनाव जीत गया उसके बाद भी 1962, 1967, 1969 और 1974 ई. में भी मैं विधानसभा में चुनकर आ गया। विधानसभा में आने के बाद भी मेरा लेखन कार्य चलता रहा। जब सन् 1980 ई. में मैं विधान परिषद् का सदस्य हो गया तो मुझे अधिक अवसर मिलता था। इस बीच मैंने विधानसभा लाइब्रेरी में काफी अध्ययन किया और लेखन का कार्य भी करने लगा। इसके बाद में जब मैं 1993 ई. में अरूणाचल प्रदेश का राज्यपाल हो गया तब मुझे बड़ा अवसर मिला और कई पुस्तकों की रचना मैंने कर डाली। राज्यपाल पद से हटने के बाद भी मेरा लेखन कार्य अब भी चल रहा है। इसलिए लेखक के साथ मुझे राजनीतिज्ञ भी कह सकते हैं।

सुबुद्ध : सामान्यतः दलितों को पग–पग पर कठिनाईयां और अपमान झेलने पड़ते हैं। आप अपने जीवनकाल की कोई ऐसी घटना बताएं जिसने आपको सबसे अधिक झकझोरा हो? ।

डॉ. माताप्रसाद : सन् 1954 ई. में मैं प्राइवेट जूनियर हाईस्कूल सराय युसूफ में प्रधान अध्यापक था और उसी के साथ मैं मण्डल कांग्रेस कमेटी मछली शहर का महामंत्री भी माल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री नरेन्द्र बहादुर सिंह बड़े जमींदार थे। एक रोज मुझे उनके घर पर जाने का अवसर मिला, उनके घर पर मुझे पत्तल में खाना आया और एक शीशे का गिलास जो एक ताखे पर रखा हुआ था जिसमें संभवतः दलितों को पानी दिया जाता था उस गिलास में मुझे पानी आया। पत्तल पर खाने का तो मुझे ज्यादा कष्ट नहीं हुआ किन्तु शीशे के रखे गिलास में पानी पीने पर मुझे बड़ा ही कष्ट हुआ। उस समय तो मैं कुछ बोला नहीं किन्तु उसके बाद फिर मैं नरेन्द्र बहादुर सिंह के घर पर कभी गया नहीं।

सुबुद्ध : दलित साहित्य को आप कैसे परिभाषित करेंगे ?

डॉ. माताप्रसाद : दलित साहित्य समाज में दबाये गये, उपेक्षित और वंचित लोगों का जिन्हें अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां घुमंतू और विमुक्त जातियां कहते हैं उनको जिसमें अपमानित करने का जो दंश होता है उसके कारणों की खोज और उसके निवारण और संघर्ष करने को प्रेरित करने के सम्बन्ध में जो साहित्य लिखा जाता है उसे दलित साहित्य कहते हैं। इसका उद्देश्य वर्ण, जाति, भेदभाव, पूजा, पाखण्ड, अवैज्ञानिक बातों, कर्मकाण्ड, भाग्यवाद का विरोध होता है। समाज के सभी लोगों को स्वतंत्रता, समानता, लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता और न्याय का अवसर मिलने की बातें लिखी होती हैं। धर्म, नस्ल, रंग, लिंग किसी प्रकार का भेदभाव उसमें नहीं होता है। सभी लोगों को मानवता का सम्मान मिले, ऐसे लेखन को मैं दलित साहित्य लेखन मानता हूँ।

सुबुद्ध : सन्त कबीर और रविदास आदि संतों

द्वारा किये गये जागरण और आंदोलन को दबाने के लिए तुलसीदास ने रामचरित मानस की रचना की। इस पर आप क्या कहना चाहेंगे?

डॉ. माताप्रसाद : आपके उक्त कथन से मैं काफी अंश तक सहमत हूं। संतों की भेदभाव की बातों को काटने के लिए ही रामचरित मानस की रचना की गयी लगती है। संत कबीर और संत रैदास 14वीं, 15वीं सदी में हुए जबकि भारत में पठान सिकन्दर लोधी का राज्य था। इन सन्तों की टोलियां होती थीं वे गांवों में घूम–घूम कर सन्तों की बातों का प्रचार करती थी। इनका प्रचार उत्तरप्रदेश में ही नहीं बल्कि मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान और पंजाब तक होता था। इनकी वाणियों में समी लोगों के प्रति समानता की भावना थी जो ब्राह्मणों को पसन्द नहीं आती थी। इससे ब्राह्मणों का सम्मान कम होने की आशंका हो गयी थी। 16वीं शताब्दी में अकबर के समय में भक्त तुलसीदास हुए उन्होंने सन्तों की कही गयी बातों के विरूद्ध लिखने का निश्चय किया जिसमें उनके रामचरित मानस में बहुत सी बातें सन्तों की बातों के विरोध में लिखा गया। उदाहरण के लिए कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सन्त रविदास और सन्त कबीर दोनों वेदों को नहीं मानते थे। सन्त रविदास ने लिखा–चारों वेद करौं खण्डौति, ताकहें विप्र करत दण्डौति।

संत कबीर ने लिखा – बांभन कीन्हा वेद पुराना, कैसेहु के मोहि मानुष जाना। ब्रहमन भूले पढ़ि गुन वेदा, आप अपनपो जानु न भेदा।

तुलसीदास वेद और पुराणों की बातों को मानते थे और उस पर चलने को कहते थे। उन्होंने रामचरित मानस में लिखा – सोधि सुस्मृति वेद पुराना, कीन्ह भरत दस गात विधाना। सुनु मुनि कह पुरान स्रुति संता, मोहि बिन न कतहूं नारि बसन्ता।

संत जन जन्म को नहीं कर्म को महत्व देते थे। संत कबीर ने लिखा –

कबीर ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होई
सुवरन कलस सुरा भरा, साधुन निन्दा सोई
एक चाम एक मल मूतर, एक रकत एक गूदा
एक बूँद से सब उत्पन्ना, को बांभन को सूदा
जो बांभन तू बंभनी जाया, आन बाट होइ क्यों नहीं आया
पाँच तत्व का पूतरा, रज बीरज की बूंद
एकै घाटी नीसरा, ब्रहमन, छत्री, शूद
संत रविदास ने कहा–
रैदास जनम के कारने, होत न कोऊ नीच।
नर को नीच कर डारिहे, ओछे करम की कीच।।
जनम–जाति कू छॉडि के, करनी जान प्रधान।
इहौ वेद को धरम है, कह रैदास बखान।।
ब्रहमन, खत्री, वैश्य, सूद, रैदास जनम से नाहि।
जो चाहे सुबरन कऊ, पावै करमन माहि।।
ऊँचे कुल का जनमिया, ब्रहमन होय न कोय।
जो जन ब्रम्हन आत्मा, रैदास ब्रम्हन सोय।।
रैदास सुकरमन करन से, नीच ऊँच होय जात।
करहि कुकरम ऊँच भी, महानीच कहलाय।।

तुलसीदासजी उक्त का विरोध करते हैं। उन्होंने ब्रहमन जाति में पैदा होने की प्रशंसा की है तथा शूद्रों जिनमें आज के दलित और पिछड़ी जातियां हैं उनकी निन्दा की है–

बादहिं सूद्र द्विजन संग, हम तुमसे कछु घाटि।
जानहिं ब्रह्म जो विप्रवर ऑखि दिखावहि डॉटि।।
मन, क्रम, वचन, घमंड तजि, जो पूजै भूदेव।
मोहि समेत विरंचि सिव, बस ताके सब देव ।।
सिंहासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमि–सुर, भे सब पूरन काम।।
तप, बल, विप्र सदा बरियारा, तिनके कोप न कोउ रखवारा।
सूद्र, गवार, ढोल पसु. नारी, सकल टाड़ना के अधिकारी।
पूजहु विप्र ग्यान–गुन हीना, सूद न गुनगन ग्यान प्रवीना।।
लोक वेद सब भांतिहि नीचा, जासु छाँह छुइ सेइअ सींचा।
जे बरना सम तेलि कुम्हारा, स्वपच कुम्हार कोल कलवारा।।
आमीर जन किरात खस, स्वपचाति अघ रूप जे।

संतो ने मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा और कर्मकाण्ड का विरोध किया। संत कबीर ने कहा है पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजू पहार। उससे तो चकिया भली, जेहि

पीसि खाय संसार।। हिन्दू आपनि करै बड़ाई, गागरि छुवन न देई।

वेस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुवाई।।

संत रविदास ने कहा –

कहा भये नाचे अरू गाये, कहां भये व्रत कीन्हें।
कहां भये जे चरन पखारे, जौलों तत्व न चीन्हें।।
का मथुरा, का द्वारिका, का कासी हरद्वार।
रैदास दिलहि मा खोजिये तहं मिलिया दिलदार।।
मस्जिद सो कछु घिन नहीं, मन्दिर सो नहिं प्यार।
यामहँ अल्लह राम नहिं. कह रविदास विचार।।
रविदास हमारो राम जो, दशरथ को सुत नाहि।

तुलसीदास संतों की उक्त बातों का विरोध करते हैं और श्री रामचन्द्र को भगवान का अवतार मानकर उनकी पूजा करने को कहते हैं।

भये कृपाला, दीन दयाला, कौशिल्या हितकारी।
विप्रथेनु सुर संतहित, लीन्ह मनुज अवतार ।।
रघुपति भगति सजीवन मूरी, अनुपान श्रद्धा मति पूरी।।
तीरथ पति पुनि देख प्रयागा, निरखत जनम कोटि अघमागा।
देखि परम पावन पुनि बेनी, हरनि शोक हर लोक निसेनी।

उक्त उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि संतों ने जो कर्म को ऊँचा स्थान दिया है उसे तुलसीदास ने जन्म के आधार पर उच्चता दी है और इनके प्रमाण संतों की वाणियों और तुलसीदास के रामचरित मानस में मिलते हैं।

सुबुद्ध : आपके विचार से दलित साहित्य केवल दलित ही लिख सकते हैं ? या गैर दलित भी ?

डॉ. माताप्रसाद : अब तक माना जाता रहा है कि जो भुक्तभोगी हैं या जिन्हें स्वानुभूति है, वही दलित साहित्य लिख सकते हैं किन्त अब माना जाने लगा है कि दलित साहित्य के मानकों को यदि गैर दलित साहित्यकार भी पूरा करते हैं तो उनकी रचना को दलित साहित्य की श्रेणी में माना जा सकता है। दलित साहित्य के मानदण्ड हैं जिसमें दलितों के अपमान, उत्पीड़न के साथ ही उनके कारण और निवारण को बताया जाय और उसके विरूद्ध संघर्ष करने को प्रेरित किया जाय। भाग्य, पूर्वजन्म, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, पुरानी परम्परा, मन्दिर पूजा, तीर्थ व्रत, देवी देवता, चमत्कार, भूत प्रेत और अवैज्ञानिक बातों का उसमें विरोध हो तथा उसकी भाषा ऐसी हो जो साधारण पढ़े–लिखे लोग भी समझ सके। ऐसे साहित्य लिखने वालों को दलित साहित्यकार की श्रेणी में माना जा सकता है किन्तु यदि कोई दलित भी उक्त मानदण्डों को पूरा नहीं करता है तो उसके लेखन को दलित साहित्य नहीं माना जा सकता है।

सुबुद्ध : कुछ लोग दलित शब्द को अपमानजनक मानकर दलित साहित्य का नाम बदलना चाहते हैं, इस सम्बन्ध में आपको क्या कहना है?

डॉ. माताप्रसाद : यह सही है कि कुछ दलित साहित्यकार दलित साहित्य का नाम बदलना चाहते हैं वे इसका नाम अम्बेडकरवादी साहित्य, फूले अम्बेडकरवादी साहित्य या आजीवक साहित्य नाम देना चाहते हैं। यह सही है कि दलित साहित्य पर डॉक्टर अम्बेडकर का गहरा प्रभाव है। किन्तु दूसरे कई दलित महापुरुषों का भी जिनमें संत कबीर, संत रविदास, पेरियार, रामास्वामी नायकर, महात्मा फूले, सन्त गाडगे आदि कई महापुरुष हैं जिनका प्रभाव भी दलित साहित्य पर है। तथागत बुद्ध की श्रमण संस्कृति का भी इस पर प्रभाव है। मैं समझता हूँ कि अभी इसका नाम दलित साहित्य ही रहना चाहिए क्योंकि दलित साहित्य की सभी विधाओं में पर्याप्त रचनाएं हो चुकी हैं। कई दलित साहित्य की पत्रिकाएं निकल रही हैं। कई गैर दलित पत्रकारों ने दलित साहित्य पर अपने विशेषांक निकाले हैं। अनेक विश्वविद्यालयों में दलित साहित्य पर शोध कार्य हो रहे हैं। देश और विदेश में दलित साहित्य पर अनेक गोष्ठियां हुई हैं। कई संस्थाएं देश और प्रदेश स्तर पर दलित साहित्य के संवर्धन का काम कर रही

हैं। भारत की विभिन्न भाषाओं में दलित साहित्य की रचनाएं हुई हैं इसलिए यदि दलित साहित्य का नाम बदला जाता है तो दलित साहित्य के नाम पर जो रचनाएं हुई है उनकी उपयोगिता संदिग्ध हो जायेगी इसलिए मैं अभी दलित साहित्य ही नाम रखने का समर्थक हूं।

सुबुद्ध : दलित साहित्यकारों को आप कौन सा संदेश देना चाहते हैं ?

डॉ. माताप्रसाद : दलित साहित्य पर संत रविदास, डॉ. अम्बेडकर तथागत् बुद्ध पर सभी विधाओं में अनेक रचनाएं हो चुकी हैं। अब दलित साहित्य को मौलिक रचनाओं की आवश्यकता है। अभी तक दलित साहित्य में उपन्यासों और नाटकों की कमी है। इसे लिखा जाना चाहिए। बाल साहित्य, व्यंग्य, हास्य रचनाएं नहीं लिखी गयी हैं। यह कमी पूरी की जाय। दूसरी भाषाओं में जो दलित साहित्य लिखा गया है उसका अनुवाद हिन्दी साहित्य में भी आना चाहिए। मैं यही संदेश दलित साहित्यकारों को देना चाहता हूँ।

एस. 33, एल.बी.ए. कॉलोनी, ऐशबाग
लखनऊ–226004 (उ.प्र.)

सरहपाद की धरती से विश्व को हिन्दी का संदेश विक्रमशिला बौद्ध–महाविहार में 'शब्द यात्रा' की काव्य–गोष्ठी सम्पन्न

सिद्ध सरहपाद को हिन्दी का प्रथम कवि होने का गौरव प्राप्त है, जिनका संबंध विक्रमशिला एवं नालंदा से था। उसी विक्रमशिला बौद्ध–महाविहार के प्रांगण में 10 जनवरी 2021 को विश्व–हिन्दी–दिवस की शुभ–बेला में यहाँ के कवियों ने 'शब्दयात्रा भागलपुर' के नेतृत्व में इतिहास रच दिया, जब सरहपाद की धरती से हिन्दी को विश्व संघ (UNO) की सातवीं भाषा बनाने का आह्वान किया। हिन्दी के प्रथम कवि सिद्ध सरहपाद की रचना–'ऊँचा–ऊँचा पावत, ताहिं बसै सबरी माला / मोरंगी पिच्छि पहिरहि सबरी गीबत गुजरी माला' को स्मरण कर, संचालक 'शब्दयात्रा' के अध्यक्ष श्री पारस कुंज ने विक्रमशिला बौद्ध–महाविहार के प्रांगण में

काव्य–संगोष्ठी का प्रारंभ किया तथा अपना उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि–'सरहपाद की इस पूण्यभूमि पर काव्य–पाठ करने की मेरी वर्षों पुरानी अभिलाषा आज पूरी हुई !

काव्य–संगोष्ठी की अध्यक्षता करते हुए बिहार के सुप्रसिद्ध हास्य–व्यंग्य कवि तथा हास्य–व्यंग्य की राष्ट्रीय हिंदी पत्रिका 'उल्लू' के संपादक श्री अश्विनी कुमार भागलपुरी ने कहा कि–'सभी कवियों ने हिंदी पर कविता पढ़कर इस सिद्ध–प्रांगण को न सिर्फ गुंजायमान ही किया बल्कि सरहपाद की आत्मा को शान्ति भी प्रदान किया है !'

उद्‌घाटन करते हुए हिंदी–अंगिका के सुचर्चित कवि श्री अंजनी कुमार शर्मा ने कहा कि–'जिनको हिंदी का जन्मदाता कहा जाता है, उस सरहपाद की धरती पर हिंदी की गूंज नहीं सुनाई दे, यह तो बेईमानी होगी। यही कारण है विक्रमशिला बौद्ध–महाविहार ने अपने प्रांगण में विश्व–हिंदी–दिवस पर कवियों को आकर्षित किया।'

मुख्य अतिथि 'दैनिक जागरण' के वरिष्ठ उप–संपादक कवि तथा लघुकथाकार श्री विकास पाण्डेय ने आज के आयोजन को ऐतिहासिक बताते हुए इसके महत्व को रेखांकित किया।

इस अवसर पर कहलगांव के वरिष्ठ पत्रकार–द्वय सर्वश्री विजय कुमार विजय एवं पवन कुमार चौधरी ने अपनी गरिमामई उपस्थिति दर्ज कराते हुए कहा कि – 'विश्व–हिंदी–दिवस के दिन 'विक्रमशिला महाविहार' की धरती पर, 'शब्दयात्रा भागलपुर' द्वारा ऐसी काव्य–संगोष्ठी इस इलाके में आज पहली बार हुई है। ऐसा आयोजन होने पर विक्रमशिला की ऐतिहासिक महत्ता कविताओं के जरिए बढ़ेगी ऐसा विश्वास है !'

पारस कुंज, सम्पादक–शब्द यात्रा
'सीता निकेत' जयप्रभा पथ,
भागलपुर–812002 (बिहार) मोबा. 6201333447

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

मध्यप्रदेश शासन

राष्ट्रीय
खाद्य सुरक्षा
की सूची में
37 लाख
नये हितग्राही जुड़े

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

जरूरतमंदों के साथ हर कदम पर है सरकार

- प्रदेश के 25 श्रेणियों के पात्र लगभग 37 लाख हितग्राही जिनके पास राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम की पात्रता पर्ची नहीं है, उन्हें पात्रता पर्ची जारी कर निःशुल्क खाद्यान्न प्रदाय किये जाने का अभियान प्रारंभ किया गया है।
- एक सितम्बर से प्रदेश के ऐसे सभी गरीबों को जिन्हें अभी तक उचित मूल्य राशन नहीं मिल रहा था, अब उन्हें 1 रुपये प्रति किलो में 5 किलो गेहूं, चावल एवं एक किलो नमक का पैकेट प्रतिमाह प्रदान किया जा रहा है।

- कोरोना संक्रमण के दौरान गरीब परिवारों को अतिरिक्त खाद्यान्न उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अप्रैल माह से दिया जाने वाला निःशुल्क राशन अब नवंबर माह तक प्रदाय किया जाएगा।
- प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के अंतर्गत सम्मिलित पात्र हितग्राहियों को अतिरिक्त रूप से अप्रैल 2020 से 5 किलो प्रति हितग्राही निःशुल्क खाद्यान्न और प्रति परिवार 01 किलो दाल दी जा रही है।

हर हितग्राही को खाद्यान्न देने के लिए प्रतिबद्ध
मध्यप्रदेश सरकार

प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर आत्मनिर्भर निधि योजना

शहरी पथ विक्रेता ऋण

योजना के अंतर्गत नाई, बांस की डलिया, कबाड़ी वाला, लोहार, पनवाड़ी, मोची, चाय की दुकान, सब्जी भाजी, फूल विक्रेता, वस्त्र विक्रेता, हथकरघा और आईसक्रीम पार्लर सहित 35 व्यवसायों को सम्मिलित किया गया है।

मुख्यमंत्री ग्रामीण पथ विक्रेता ऋण योजना

- ग्रामीण क्षेत्र के लिये योजना प्रारंभ करने वाला पहला राज्य बना मध्यप्रदेश।
- 8 लाख 56 हजार ग्रामीण पथ विक्रेताओं ने कराया इस योजना में पंजीयन।
- 4 लाख 7 हजार 707 प्रकरण सत्यापित।
- 3 लाख 52 हजार 656 प्रकरण स्वीकृत।
- 1 लाख 84 हजार 384 प्रकरण बैंक को अग्रेषित।
- 22 हजार 287 हितग्राहियों को ऋण वितरित

ग्रामीण पथ विक्रेता ऋण

योजना के अंतर्गत केश शिल्पी, हाथठेला चालक, साइकिल रिक्शा चालक, कुम्हार, साइकिल एवं मोटर साइकिल मैकेनिक, बढ़ई, ग्रामीण शिल्पी, बुनकर, धोबी, टेलर और कर्मकार मंडल से संबंधित कामगार लाभ ले सकेंगे।

देश में मध्यप्रदेश नंबर 1

- 378 नगरीय निकायों में 8 लाख 78 हजार 485 स्ट्रीट वेंडर्स का पंजीयन
- अभी तक 4 लाख 53 हजार 885 आवेदन सत्यापित
- 4 लाख 13 हजार 891 स्ट्रीट वेंडर्स को परिचय-पत्र वितरित
- लोन स्वीकृति हेतु बैंकों को 2 लाख 93 हजार 219 प्रकरण प्रेषित
- 1 लाख 67 हजार 315 से अधिक स्ट्रीट वेंडर्स को लोन स्वीकृत
- देश में कुल स्वीकृत प्रकरणों में 47 प्रतिशत से अधिक म.प्र. के
- अब तक 1 लाख 1 हजार 585 स्ट्रीट वेंडर्स को ऋण वितरित

आइये हम सब मिलकर आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश बनायें

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आश्वस्त : म.प्र. शासन/2020

संत गाडगे
जन्म जयंति 23 फरवरी 1876
शत-शत नमन

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिविजन /204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

_____

_____

_____

_____

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार